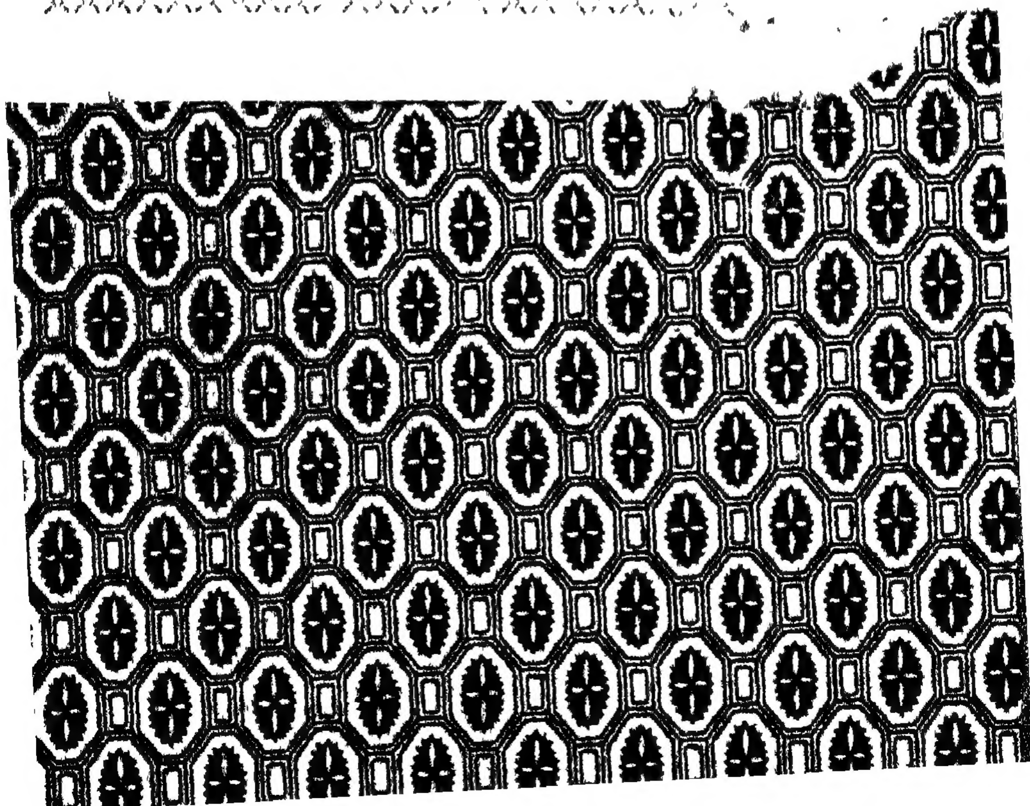
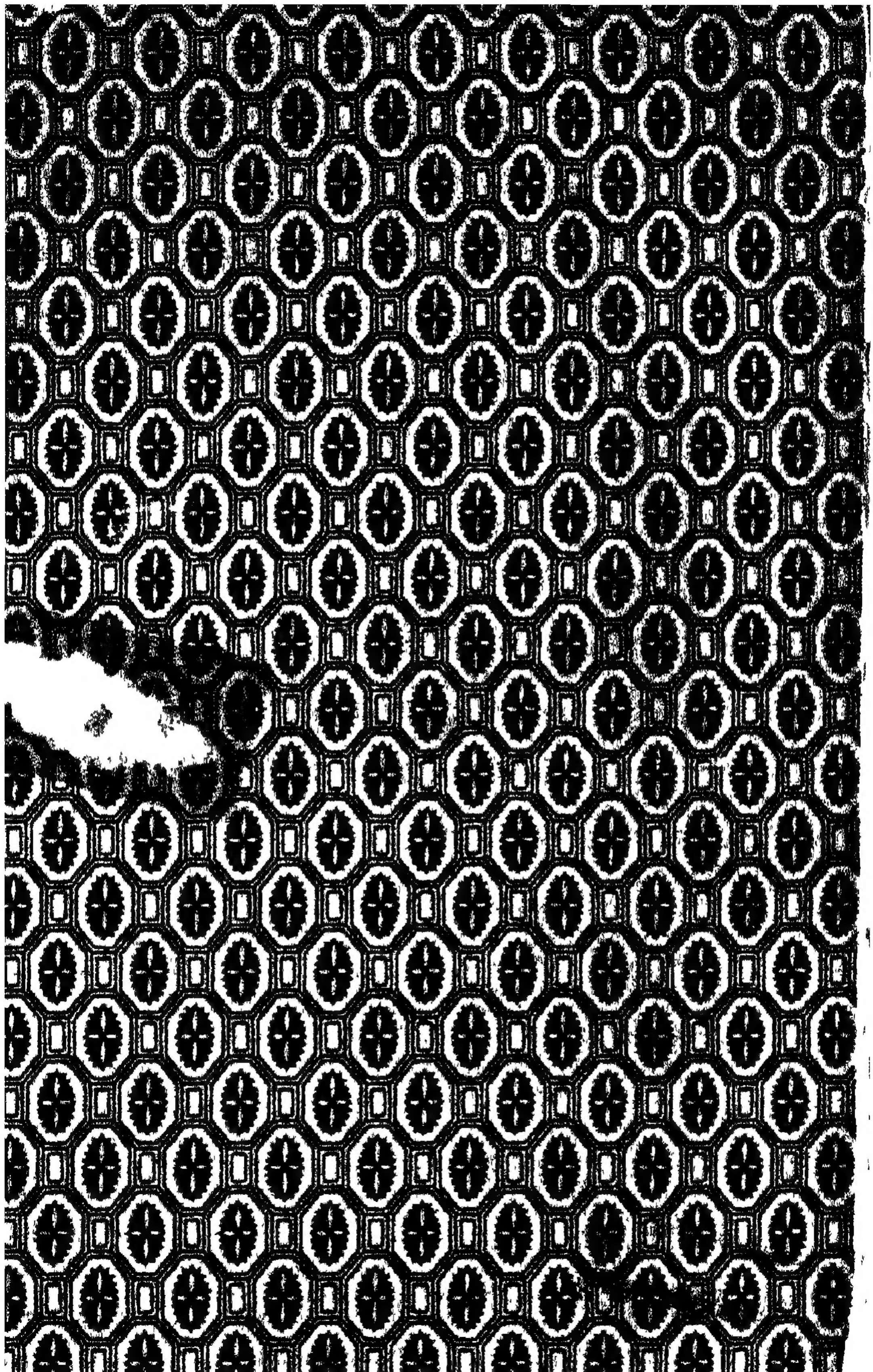




हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका १७ वाँ ग्रन्थ।

दुर्गादास।



सुप्रसिद्ध नाटककार

स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके बंगला नाटकका

हिन्दी अनुवाद



अनुवादक—

पं० रूपनारायण पाण्डेय।



प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।



आषाढ़, वि० सं० १९८४।



षष्ठावृत्ति।] जुलाई, १९३० [मूल्य एक रुपया

सजिल्दका १॥)

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी, प्रोप्रायटर

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव-बम्बई



मुद्रक—

मं० ना० कुळकर्णी,

कर्नाटक प्रेस,

३१८ए, ठाकुरद्वार, बम्बई २

प्रस्तावना।



(द्वितीय संस्करणसे)

स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायका यह लोकप्रिय नाटक विक्रम संवत् १९६३ में लिखा गया था। कविवरने इसे अपने पिता दीवान कार्तिकेयचन्द्रदेवके चरण-कमलोंमें भक्ति-पुष्पांजलिस्वरूप अर्पण किया है और लिखा है कि उन्हींके देव-चरित्रको सम्मुख रखकर दुर्गादास-चरित्र अङ्कित किया गया है।

दुर्गादास निःस्वार्थ प्रभुपरायणता और कर्तव्यनिष्ठाका आदर्श चित्र है। इसकी समालोचना करते हुए श्रीयुक्त प्रफुल्लकुमार सरकार बी० ए०, बी० एल० ने बंगदर्शनमें एक जगह लिखा था—“ दुर्गादास और शाहजहाँ द्विजेन्द्रलालके कीर्तिस्तम्भ है। दुर्गादासमें उन्होंने एक ऐसा चरित्र अंकित किया है, जो बंगला साहित्यमें दुर्लभ है। ” पर द्विजेन्द्रलालके अन्तरंग मित्र स्वर्गीय बैरिस्टर लोकेन पालित आई० सी० एम० इसमें एक त्रुटि बतलाते थे। वे ‘ दुर्गादास ’ को ‘ दोष-त्रुटि-हीन सद्गुणावलीकी समष्टि ’ कहते थे। पर यह त्रुटि—यदि इसे त्रुटि कह सकते हों तो—द्विजेन्द्र बाबूने जान-बूझकर की थी—उन्होंने इसे आदर्शचरित्रके रूपमें अंकित करना ही अच्छा समझा था। इस नाटकमें दुर्गादास, दिलेरखाँ, कासिम, भीमसिंह, और महामायाके उन्नत चरित्र, श्यामसिंह और संभाजीके निकृष्ट चरित्रोंके पार्श्वमें उज्ज्वलतर होकर चमक उठे है।

इस नाटकमें कविने एक जगह दिलेरखाँके मुखसे अरण्य-रोदन कराया है:— “ मैं चाहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों, मजहब, कौम और रस्म-रवाजोंके फर्कको भूलकर, घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, एतकाद और भक्तिके साथ, इस हिन्दुस्तानकी हरीभरी धरतीके जयजयकारसे आसमानको गुंजा देवें। उनके दिलोंमें यह खयाल पैदा हो कि यह हिन्दुस्तान हमारी मा है और हम हिन्दू-मुसलमान एक माके दो लड़के—भाई भाई—हैं ”

और एक जगह—दक्षिणमें संभाजीके किलेमें—दुर्गादाससे कहलाया है—

" मराठोंकी जाति लड़नेवाली है। इनका घोड़ा चलाना, युद्ध-कौशल और सहनशीलता सब अद्भुत हैं।—इनके साथ यदि राजपूतोंकी एकाग्रता, स्वार्थत्याग और दृढताको भी मिला सकता, तो क्या न हो सकता था! पर नहीं, यह न होगा। भारतका भाग्य अच्छा नहीं है। हिन्दू जाति बिखर गई है, उसका फिर एक होना बहुत कठिन है।"

जिस समय यह नाटक रंगभूमिपर खेला गया, उस समय दर्शकोंने द्विजेन्द्र बाबूके जयजयकारसे नाटकगृहको गुँजा दिया और पत्र-संपादकोंने जी खोलकर इस नाटककी प्रशंसा की। यहाँ 'नव्य भारत' नामक मासिकपत्रसे दुर्गादासकी समालोचनाके कुछ अंश उद्धृत किये जाते हैं:—

" * * * द्विजेन्द्रलालकी लेखनीने एक स्वर्गीय प्रभासे बंगला-साहित्याकाशको चमका दिया है। वह स्वर्गीय प्रभा 'दुर्गादास' है। * * * पुस्तकें देशमें अनेक बनी और आगे भी बनेंगी; * * चाहे जिन पुस्तकोंके विषयमें पूछिए, उनमें अधिकांश पुस्तकें मृत मनुष्योंकी पूतिगन्धमय बातोंसे भरी हुई है। प्रेमकी कहानियाँ, प्रणयकी गाथाये, शत्रुकी उत्तेजनायें, इस तरह सारा बंगला-साहित्य केवल पराधीनता और कापुरुषताके असार चित्रोंसे व्याप्त हो रहा है। * * * इतने दिनोंके बाद द्विजेन्द्रलालके हृदयमेंसे स्वर्गीय प्रभा फूट कर बाहर हुई है। * * द्विजेन्द्रलाल रूसो और बाल्टेयरके समान बंगालमें देवत्व और अमरत्व प्राप्त करनेके योग्य है।

"कोई पूछेगा कि इस नाटकमें क्या कोई भी दोष नहीं? 'गाते गाते रजिया अजितके गले लग जाती है।' बस, सारी पुस्तकमें यदि कोई दोषकी बात है, तो यही है। * * और सर्वत्र ही मार्जित रुचि, विशुद्ध भाव, सुन्दर लेखन-कौशल और असाधारण कवित्व छलक रहा है। पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानो हम कोई धर्मग्रन्थ पढ़ रहे हैं, मालूम होता है कि स्वार्थत्यागके मन्त्रका एक सजीव इतिहास पढ़ रहे हैं, समझ पड़ता है स्वदेश-भक्तिकी एक उज्ज्वल कहानी बाँच रहे हैं। जिस समय पढ़कर समाप्त किया, उस समय मुँहसे निकल पड़ा— कैसी आश्चर्य-कारिणी कहानी पढी, कैसा मधुर चित्र देखा! ऐसा तेजःपूर्ण सर्वाङ्गसुन्दर नाटक बंगलाभाषामें अबतक नहीं पढ़ा, और नहीं कह सकते कि कभी आगे भी पढ़ेंगे या नही। * * *"

" यह नाटक कवित्व, स्वदेशप्राणता, निःस्वार्थता, पवित्रता, दया और क्षमा आदि सभी गुणोंमें आदर्श है। हमने जो चाहा है इसमें वही पा लिया है। वास्तवमें द्विजेन्द्रलाल इस एक पुस्तकको लिखकर अमर हो गये है। * * * "

इसी समय कुछ समालोचनायें ऐसी भी निकली थीं, जिनमें इस नाटकके प्रभावके सम्बन्धमें आक्षेप किये गये थे। एक मुसलमान समालोचकने इस नाटकका अभिनय देखकर लिखा था कि इसमें मुसलमानोंको छोटा करके हिन्दुओंको बड़ा बनाया है।

इन विरुद्ध समालोचनाओंका उत्तर ग्रन्थकार स्वयं ही इस नाटककी भूमिकामें दे गये है जिसका सारांश नीचे दिये जाता है :—

" गतवर्ष हमारे मित्र श्रीयुत प्रमथनाथ वन्द्योपाध्यायने हमसे राठोर वीर दुर्गादासके विषयमें नाटक लिखनेका अनुरोध किया। तब हमने राजस्थानमें लिखी हुई दुर्गादासकी जीवनीको फिर पढ़ा। देखा कि दुर्गादासका चरित्र देवदुर्लभ है—स्वर्णपत्रपर अंकित कर रखनेके योग्य है। बस, उसी समय हमने दुर्गादासचरितको लिख डालनेका संकल्प कर लिया।

" बंगीय ऐतिहासिक 'ट्रेजिडी' जो कुछ है—उसकी भित्ति विजातियोंके हाथों स्वजातीय वीरकी हार और मृत्युमें है। दुर्गादास उस श्रेणीका 'ट्रेजिडी' नहीं है। दुर्गादास औरंगजेबके साथ प्रत्येक युद्धमें जीते हैं और राणा राजसिंहने तथा उन्होंने सम्राट्को कार्यतः राजस्थानसे शृगालकी नाई भगाया है। दुर्गादासका 'ट्रेजिडीत्व' (यदि इसे ट्रेजिडी कहा जाय) यवन राजाके हाथों हिन्दू वीरका निग्रह नहीं है। इसी तरह इसका ट्रेजिडीत्व किसी हिन्दू राजाके निकट उसके किसी भक्त वीरके निग्रहमें नहीं है। क्योंकि अजितसिहकी अकृतज्ञता भी दुर्गादासके हृदयपर उतनी गहरी चोट नहीं पहुँचा सकी थी। इसका ट्रेजिडीत्व है चिरजीवनकी उपासनाकी निष्फलतामें, जन्मभरकी साधनाकी असिद्धतामें और प्राकृतिक नियमके विरुद्ध व्यक्तिगत चेष्टाकी हारमें। इसका ट्रेजिडीत्व इस एक बातमें है—'सब चेष्टा व्यर्थ हुई—इस जातिको खींच कर खड़ा नहीं कर सका।'

" अब तक हिन्दू पाठक नाटक–उपन्यासोंमें (राजसिंहको छोड़ कर) विजातियोंके द्वारा स्वजातियोंकी केवल पराजयवार्ता ही पढ़ते आ रहे है। इतने दिनोंतककी इस इकंगी पराजयके बाद दुर्गादासकी यह विजयदुन्दुभि क्या

उनके कानोंमें संगीतवर्षण नहीं करेगी? राजस्थानके इस परिच्छेदमें राजपूतोंकी वीर्यगरिमाका निर्वाणोन्मुख प्रदीपके समान उज्ज्वलतम विकास देख पड़ता है। राजस्थानके इसी परिच्छेदको लेकर दुर्गादास रचा गया है। यह नाटक चाहे जैसा हो—पर इसका विषय महत् है। और यही बंगीय पाठकोंके ऊपर हमारे दुर्गादासका प्रधान दावा है।

"मूल घटनाका वृत्तान्त हमने केवल राजस्थानसे ही नहीं लिया है, अर्म्मादिके इतिहाससे भी उपादान संग्रह किये हैं।

"औरंगजेबको हमने पिशाचरूप कल्पित नहीं किया है—जैसा कि टाड और अर्म्मने किया है। हमने उसे सरल धार्मिक मुसलमानके रूपमें खड़ा किया है। उसके द्वारा जो अत्याचार हुए, वे उसकी अत्यधिक धर्मान्धता और इस्लाम-धर्म-प्रचारके दृढ संकल्पके फलसे हुए। * * *"

हमें यह प्रकट करते हुए प्रसन्नता होती है कि 'दुर्गादास' का हमारे हिन्दीभाषाभाषी पाठकोंने भी यथेष्ट आदर किया है और इसका स्पष्ट प्रमाण यही है कि केवल दो ही वर्षोंमें इस नाटकके प्रथम संस्करणकी २००० प्रतियाँ खप गई हैं।

इस संस्करणमें यत्र तत्र थोड़ा बहुत परिवर्तन किया गया है। जो भूलें रह गई थीं, वे ठीक कर दी गई हैं और गीतोंको बिलकुल नये सिरेसे बनवा दिया है। पहले संस्करणमें जो गीत थे, वे मूल गीतोंके अनुवाद या भावानुवाद नहीं थे, यहाँ वहाँसे संग्रह किये हुए थे; पर अबकी बार वे मूल गीतोंके भावानुवाद हैं।

आशा है कि पाठक इन परिवर्तनोंको पसन्द करेंगे और इस नाटकको तथा इसके स्वर्गीय भावोंको अधिकाधिक फैलानेका प्रयत्न करेंगे।

अगहन सुदी ६,
वि० सं० १९७५

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी

नाटकके प्रधान पात्र



नट

औरंगजेब	...	...	...	भारत-सम्राट्
राजसिंह	...	...	...	मेवाड़के राना
श्यामसिंह	...	...	...	बीकानेरके राजा
संभाजी	...	...	...	मराठोंके राजा
दुर्गादास	...	...	...	मारवाड़के सेनापति
दिलेरखाँ	...	...	...	मुगल-सेनापति
तहव्वरखाँ	...	...	...	
अकबर	...	...	...	औरंगजेबके चारों लड़के
मौजम	...	...	...	
आजिम	...	...	...	
कामबख्श	...	...	...	
भीमसिंह	...	...	...	राना राजसिंहके लड़के
जयसिंह	...	...	...	
समरदास	...	...	...	दुर्गादासका भाई
अजितसिंह	...	...	...	जसवन्तसिंहका लड़का
कासिम	...	...	...	एक मुसलमान।

नटी

गुलनार	...	...	...	औरंगजेबकी बेगम
महामाया	...	...	...	जसवन्तसिंहकी रानी
कमला	...	...	...	जयसिंहकी रानियाँ
सरस्वती	...	...	...	
रजिया	...	...	...	अकबरकी लड़की



दुर्गादास ।

पहला अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान — दिल्लीके महलमें सम्राट् औरंगजेबका सभा-भवन ।

समय — सबेरे आठ बजे ।

[सिंहासनपर बादशाह औरंगजेब बैठे हुए हैं । उनके बाईं ओर
बीकानेरके राजा श्यामसिंह बैठे हैं । दाहिनी ओर तहव्वरखाँ
और दो सिपाही एकाग्र भावसे नीची निगाह किये
खड़े हैं । सामने राठौर-सेनापति दुर्गा-
दास और उनके भाई
समरदास खड़े हैं ।]

औरंगजेब — दुर्गादास, जसवन्तसिंहकी मौतको मुगल बादशाहत-की बदनसीबी समझना चाहिए ।

दुर्गादास — जहाँपनाह, साम्राज्यकी भलाईके लिए—राजाकी आज्ञा-का पालन करनेके लिए—मरनेमें हर एक प्रजाका गौरव है ।

औरंगजेब — तुमने ठीक कहा दुर्गादास, जसवन्तसिंहके सिवा बागी काबुलियोंको और कौन काबूमें ला सकता ? उनका मुझपर बड़ा एहसान है — इस जिन्दगीमें मैं उस एहसानका बदला नहीं चुका सकता — (श्यामसिंहसे) क्यों न राजासाहब ?

श्याम०—बेशक।

समरदास—क्यों? जहाँपनाहने तो जसवन्तसिंहके लड़के पृथ्वी-सिंहकी जान लेकर उसका बदला चुका दिया!

औरंग०—मैंने उसकी जान ली? ऐ जवान! तुमको होश नहीं कि तुम किसे यह तोहमत लगा रहे हो? मैंने उसकी जान ली? मैं पृथ्वीसिंहको अपने लड़केकी तरह चाहता था। मैंने उसे अपने हाथसे खिलअतकी पोशाक पहनाई थी।

समर०—सम्राट्, उस अबोध बालकने भी यही समझा था। बेचारा सरल बालक नहीं जानता था कि वह पोशाक जहरीली है।

श्याम०—समरदास, तुमको कुछ होश है कि तुम किससे बातें कर रहे हो?

समर०—जानता हूँ राजा साहब, आपके प्रभुके साथ—अपने प्रभुके साथ नहीं।

(औरंगजेब कुछ चौंक पड़े। अपने मुँहपर इस प्रकार अपना कलंक सुननेका उनको अभ्यास न था। उनकी भौंहोंमें बल पड़ गये। लेकिन तत्काल ही उन्होंने अपनेको सँभाल लिया।)

औरंग०—कौन कहता है कि वह पोशाक जहरीली थी?

दुर्गा०—नहीं जहाँपनाह, इसका कोई प्रमाण नहीं है! यह सर्व-साधारणका अनुमानमात्र है कि वह पोशाक जहरीली थी।

समर०—(क्रोधके साथ) अनुमान? पोशाक पहननेके कुछ ही समय बाद विषके वेगसे तड़प तड़प कर बेचारा मर गया। मैंने क्या कुँअर पृथ्वीसिंहकी मौत देखी नहीं?—अनुमान? तो जसवन्त-सिंहको अफ़गानिस्तान भेजकर उनकी हत्या कराना भी अनुमान है? और आज उनकी रानी और छोटे कुँअरको दिल्लीमें रोक रखना

भी अनुमान है ? फिर तो तुम अनुमान हो; मैं अनुमान हूँ; सम्राट् औरंगजेब अनुमान हैं; मुगल-साम्राज्य अनुमान है; यह सारा विश्व अनुमान है ! यह अनुमान नहीं है दुर्गादास,—यह ध्रुव, स्थूल, प्रत्यक्ष है ।

दुर्गा०—क्रोधको शान्त करो भैया,—याद करो, क्या प्रतिज्ञा करके आये थे ।

समर०—अच्छा, मैं चुप हूँ ।—(बादशाहसे) किन्तु एक बात कह सकता हूँ जनाब ! यह न समझिएगा कि हम लोग बिलकुल दूध-पीने बच्चे हैं, कुछ नहीं समझते ! कुछ कुछ समझते हैं ।

दुर्गा०—राजाधिराज, मेरे भाईका स्वभाव ही कुछ कड़ा है—माफ कीजिए ।—जहाँपनाह, हम लोग आज बादशाहकी सेवामें एक विनीत प्रार्थना करने आये हैं ।

औरंग०—अच्छी बात है, कहो ।

श्याम०—कहो दुर्गादास, भय क्या है । सम्राट् उदार हैं । उन्होंने तुम्हारे बदमिजाज भाईको माफ कर दिया है । तुम्हारे लिए भयका कोई कारण नहीं है ।

दुर्गा०—हम लोगोंका विनीत निवेदन यही है कि जोधपुरकी महा-रानी—जसवन्तसिंहकी विधवा—बच्चेको लेकर, अपने राज्यको लौट जाना चाहती हैं । इसी बारेमें मैं सम्राट्से आज्ञा माँगता हूँ ।

औरंग०—इसमें मेरी इजाजतकी क्या जरूरत है ?

दुर्गा०—जहाँपनाहकी इजाजतकी क्या जरूरत है, सो तो मैं भी नहीं जानता । किन्तु मुगल-सेनापति तहव्वरखाँ हुजूरकी आज्ञाके बिना महारानीको यहाँसे जाने देना नहीं चाहते ।

औरंग०—(तहव्वरखाँकी ओर देखकर) किस लिए तहव्वरखाँ?

तहव्वरखाँ—जहाँपनाहका ऐसा ही हुक्म मैं समझा था ।

औरंग०—वह—हाँ, मैंने कहा था कि जसवन्तसिंहकी रानीको मैं दिल्लीसे जानेसे पहले खुश करना चाहता हूँ । जो मेहरबानी दिखानेमें मैंने जसवन्तसिंहके साथ कुछ उठा नहीं रक्खा उस मेहेरबानीसे उनकी रानीको भी मैं महरूम नहीं रखना चाहता । (श्यामसिंहसे) क्यों राजासाहब ?

श्याम०—जहाँपनाह जसवन्तसिंहके परिवारपर सदासे असीम अनुग्रह दिखाते आ रहे हैं ।

सुमर०—सम्राट् !—मुझसे बिना कहे रहा नहीं जाता दुर्गादास—सम्राट् ! आप इतनी ही कृपा कीजिए कि खुश करनेका इरादा छोड़ दीजिए । आपकी भौंहोंमें बल पड़नेसे मैं उतना नहीं डरता, क्यों कि उनका भाव समझमें आजाता है । किन्तु आपकी हँसी देखकर बड़ा डर लगता है जनाब, क्योंकि उसका भाव कुछ समझमें नहीं आता ।—सीधी भाषामें कहिए कि आप जसवन्तसिंहका सर्वनाश करना चाहते हैं. उनकी जिस तरह हत्या कराई है, उनके बड़े लड़के पृथ्वीसिंहको जिस तरह मार डाला है, वैसे ही उनकी रानी और छोटे कुँअरको भी मारना चाहते हैं । कहिए, सीधी भाषामें कहिए कि जसवन्तसिंहके कुलमें किसीको न रखिएगा । कहिए—हम समझ सकेंगे ! मैं आपसे यही भिक्षा माँगता हूँ कि आप अनुग्रह न करें, जनाब । आप लोगोंकी शत्रुतासे मित्रता बहुत भयानक है ।

दुर्गा०—भैया, तुम क्या मेरी प्रार्थनाको व्यर्थ करनेके लिए आये हो ?—तुम लौट जाओ !

समर०—जाता हूँ दुर्गादास ! और एक बात—केवल एक बात कहूँगा। मैं एक बातमें जनाबके पूर्व पुरुष अकबरकी अपेक्षा जनाब-पर अधिक श्रद्धा रखता हूँ । क्योंकि आप उनकी तरह मीठी छुरी नहीं हैं । आप खालिस मुसलमान—सरल गँवार कट्टर मुसलमान हैं । आप उनकी तरह ब्याहके बहानेसे हिन्दुओंका हिन्दूपन नहीं नष्ट करते। सीधी, साफ और पैनी पुरानी मुसलमानी रीतिसे अपने धर्मका प्रचार करते हैं ।—कहिए, इससे मैं नहीं डरता । बस, अनुग्रह न कीजिएगा । जो अनुग्रह आप कर चुके हैं वही काफी है । वह अनुग्रह अभीतक हमारे सँभाले नहीं सँभला । दोहाई है, अब और अनुग्रह न कीजिएगा !—　　(प्रस्थान)

(तहव्वरखाँका आगे बढ़कर समरदासको रोकनेकी चेष्टा करना और औरंगजेबका मना करना ।)

औरंग०—दुर्गादास, तुम्हारी खातिरसे मैंने तुम्हारे बदमिजाज भाईको माफ कर दिया। लेकिन तुम्हारे भाईने एक बात सच कही। मैं मीठी छुरी और ढोंगी नहीं हूँ । मैं भीतर और बाहर मुसलमान हूँ । इस पुराने मजहबको फैलाने और बढ़ानेके लिए ही मैं इस तख्तपर बैठा हूँ । तख्तपर बैठनेके पहले मैंने चाहे जो किया हो—बादशाह होनेके बादसे मैं इसी धर्मकी फकीरी कर रहा हूँ ।

दुर्गा०—इस बातको मैं मानता हूँ जहाँपनाह !—उसके बाद भी अगर आपने किसीके साथ बुरा बर्ताव किया होगा तो बुरे आदमीके साथ । सो तो कुछ अनुचित नहीं है ।—इसको दयाकी दृष्टिसे उचित चाहे न भी कहें, लेकिन नीतिके विरुद्ध कभी नहीं कह सकते ।

औरंग०—यह तुम मानते हो ?

दुर्गा०—मानता हूँ। लेकिन जहाँपनाह, महाराज जसवन्तसिंहने अगर कभी भ्रमवश आपकी मर्जीके खिलाफ काम किया हो, तो भी उनकी विधवा रानी और नासमझ नन्हाँ बच्चा सम्राटकी कोपदृष्टिमें पड़नेके पात्र नहीं हैं । उन्होंने कुछ अपराध नहीं किया ।

औरंग०—दुर्गादास मैं उनको सताना नहीं चाहता; खुश करना चाहता हूँ ।

श्याम०—सम्राट् उनको खुश करना चाहते हैं दुर्गादास !

दुर्गा०—सम्राट्की इस इच्छाको जानकर ही महारानीकी खुशीका ठिकाना न रहेगा !—बस, अब आज्ञा दीजिए ।

औरंग०—(श्यामसिंहसे) राजासाहब, इस समय आप मेरी खास बैठकमें चलकर ठहरिए । मैं आता हूँ । (श्यामसिंहका प्रस्थान)

औरंग०—(दुर्गादाससे) मैं देखता हूँ कि तुम सिर्फ मालिकके जाँनिसार नौकर ही नहीं हो; तुम सल्तनतके दाव-पेंचोंमें भी खूब होशियार हो । तुमसे चालाकी करना फिजूल है । तो सच बात सुनो, मैं जसवन्तसिंहकी रानी और कुँअरको चाहता हूँ ।

दुर्गा०—सो तो मैं पहलेसे जानता हूँ जहाँपनाह, लेकिन इसका कुछ कारण नहीं जान पड़ता । महारानी स्त्री हैं, और जसवन्तसिंहका लड़का दुधमुँहा बच्चा है । उन्हें लेकर सम्राट् क्या करेंगे ?

औरंग०—दुर्गादास ! शायद यह तुम जानते हो कि हिन्दोस्तानका बादशाह अपनी हर एक रिआयाके आगे अपने हरएक कामका मतलब बतलानेके लिए मजबूर नहीं है ।

दुर्गा०—(घड़ीभर सोचकर) तो जहाँपनाह, मेरी प्रार्थना बिल्कुल बेकार है ?

औरंग०—हाँ, बिल्कुल बेकार है ।

दुर्गा०—तो फिर मुझे और कुछ कहना नहीं है ।

औरंग०—तुम जसवन्तसिंहकी रानी और बच्चेको मुझे सौंपनेके लिए तैयार नहीं हो ?

दुर्गा०—जबतक दम है तबतक नहीं ।

औरंग०—सुनो दुर्गादास, तुम जसवन्तसिंहकी रानी और बच्चेको मुझे दे दो । मैं तुम्हें खूब इनाम दूँगा ।

दुर्गा०—(हँसकर) सम्राट्, मैं इस दर्जेके आदमियोंसे कुछ ऊँचे खयालका आदमी हूँ । दुर्गादास जीवनमें केवल अपने कर्त्तव्यको मुख्य मानता है और उसे ही पहचानता है । दुर्गादासके दममें दम रहते किसीकी मजाल नहीं कि उसके स्वर्गवासी स्वामी जसवन्तसिंहके परिवारके किसी आदमीके बदनपर हाथ लगा सके ।—अच्छा चलता हूँ जहाँपनाह ! आदाब !

औरंग०—ठहरो । दुर्गादासके दममें दम रहते शायद वैसा न हो सके; लेकिन दुर्गादासके मरनेपर तो हो सकेगा ? तहव्वरखाँ—गिरफ्तार कर लो ।

[तहव्वरखाँ आगे बढ़ता है ।]

दुर्गा०—(म्यानसे तलवार खींचकर) खबरदार !—इसके लिए भी तैयार होकर आया हूँ जनाब ।

(दुर्गादास कमरमें लटकती हुई तुरही या बिगुलको बजाते हैं और उसे सुनकर तत्काल ही नंगी तलवार हाथमें लिये पाँच राजपूत दरबारमें घुस आते हैं ।)

दुर्गा०—ये पाँच आदमी आपने देखे जहाँपनाह ?—अबकी तुरही बजाते ही पाँच सौ आदमी यहाँ मौजूद हो जायँगे—समझकर काम कीजिएगा ।

औरंग०—जाओ।

(सिपाहियोंसहित दुर्गादासका प्रस्थान।)

औरंग०—(दमभर सन्नाटेमें रहनेके बाद) दुर्गादास, मैं जानता था कि तुम मालिकके खैरख्वाह, होशियार, दिलेर, बहादुर हो। लेकिन मुझे यह ख्याल न था कि तुम्हारी इतनी हिम्मत हो जायगी।—(तहव्वरखाँसे) तहव्वरखाँ!

तहव्वर०—खुदावन्द!

औरंग०—सिपहसालार दिलेरखाँसे कहो, मेरा हुक्म है कि वह अभी फौज ले जाकर जसवन्तके घरको घेर ले। जाओ।

(पर्दा बदलता है।)

दूसरा दृश्य।



स्थान—दिल्लीके शाही महलमें बेगम गुलनारका कमरा।

समय—दोपहर।

गुलनार—(कमरेमें टहलती हुई आप-ही-आप) जोधपुरकी रानी!—तूने एक दिन गरूरके मारे मुझे मेरे सामने 'मोल ली हुई बाँदी बेगम' कहा था। तेरे उस घमंडको आज मैंने ठुकराकर चूर कर दिया कि नहीं? तेरे शौहरको काबुल भेजकर कत्ल करवा डाला, तेरे बड़े लड़केको जहर देकर मरवा डाला। अब तेरे सामने ही तेरे छोटे लड़केकी जान लूँगी। तुझको अपने पैरोंका धोअन पिलाऊँगी। फिर तुझे जीते ही गड़वा दूँगी। जानती है जोधपुरकी रानी! यह मोल ली हुई बाँदी बेगम ही आज इस मुगलोंकी बड़ी भारी सल्तनतपर हुकूमत कर रही है।—और औरंगजेब?

औरंगजेब तो मेरे हाथकी पुतली—मेरी उँगलीके इशारेपर नाचनेवाले हैं । पर लोग कुछ और ही समझते हैं । यह लोगोंकी हद दर्जेकी बेवकूफी है । नहीं तो इस जसवन्तसिंहकी रानी और बच्चेसे औरंगजेबको क्या जरूरत थी, कोई अपने दिलसे एक दफा यह सवाल भी नहीं करता ।

[औरंगजेबका प्रवेश ।]

गुलनार—कौन ? बादशाह सलामत ?—बन्दगी जहाँपनाह !

औरंग०—गुलनार, तुम यहाँ अकेली ?

गुलनार०—जोधपुरकी रानीकी राह देख रही थी ।—कहाँ है वह ?

औरंग०—अभी तक पकड़ी नहीं जा सकी ।

गुलनार—अभी तक पकड़ी नहीं जा सकी ?

औरंग०—नहीं ।—दुर्गादास उसे देनेके लिए राजी न होकर दरबारसे लौट गया ।

गुलनार—जिन्दा लौट गया ?

औरंग०—हाँ, उसके साथ फौज थी ।

गुलनार—और आपके यहाँ क्या फौज न थी ?—बड़ी शर्मकी बात है !

औरंग०—प्यारी—

गुलनार—मैं कोई बात सुनना नहीं चाहती जहाँपनाह ! मैं आज ही शामके पहले जोधपुरकी रानीको चाहती हूँ ।

औरंग०—गुलनार, मैंने रानीका घर घेरनेके लिए दिलेरखाँको भेजा है ।

गुलनार—अच्छा !—शामके पहले मैं उसे चाहती हूँ । याद रहे ।

(प्रस्थान)

औरंग०—(जाते जाते अपने आप) इस दुर्गादासकी कैसी हिम्मत है! अभी तक यही सोच रहा हूँ।—भरे दरबारमें मेरे सामने तलवार निकालकर और घोड़ेपर चढ़कर चल दिया!—ऐसी हिम्मत तो पहले किसीकी, उसके मालिक जसवन्तसिंहकी भी, नहीं देखी गई (धीरे धीरे प्रस्थान)

तीसरा दृश्य।

स्थान—मुगल-सेनापति दिलेरखाँके घरकी बाहरी बैठक।

समय—तीसरा प्रहर।

[दिलेरखाँ फौजी पोशाक पहन रहा है और उसका प्रधान कर्मचारी तहव्वरखाँ सामने खड़ा है।]

दिलेरखाँ—क्या कहा खाँसाहब? राठौर सेनापति दुर्गादास बादशाहकी नाकके पास तलवार घुमाकर चला गया?

तहव्वरखाँ—हाँ!

दिलेर०—और तुम खड़े खड़े देखा किये?

तहव्वर०—जी हाँ!

दिलेर०—सीधे होकर?

तहव्वर०—जहाँतक हो सका।

दिलेर०—जहाँतक हो सका, इसका क्या मतलब?

तहव्वर०—यही, बादशाहकी नाकके ऊपर उसकी तलवार घूमी थी न—

दिलेर०—बादशाहकी नाकके ऊपर घूमी?

तहव्वर०—बादशाहकी नाकके ऊपर घूमी—और खूब घूमी!

दिलेर०—तब शायद तुम जरा टेढ़े हो गये?

तहव्वर०—हाँ साहब, टेढ़ा हो गया। मैं था, इससे टेढ़ा हो गया! और कोई होता तो चित हो जाता!

दिलेर०—अपनी तलवार क्यों नहीं निकाली?

तहव्वर०—तलवार निकालनेका वक्त ही कहाँ मिला?

दिलेर०—वक्त ही नहीं मिला?

तहव्वर०—अरे उस राजपूतने एकाएक इतनी जल्दी तलवार खींच ली कि कोई भी भला आदमी तलवार खींचनेमें उतनी फुर्ती न करेगा! बादको उसके चले जानेपर—

दिलेर०—शायद तुमने तलवार खींची?

तहव्वर०—तब फिर तलवार खींचकर क्या करता?

दिलेर०—उसके चले जानेपर फिर तुमने क्या किया?

तहव्वर०—नाकपर हाथ लगाकर देखा—नाक है कि नहीं!

दिलेर०—शायद तुमको नाकके होनेमें शक हुआ?

तहव्वर०—कुछ शक तो जरूर हुआ। उस राठौरने इस तरह जल्दीसे तलवार खींचकर घुमाई थी कि उसके साथ नाकका कुछ हिस्सा चला जाना ताज्जुब न था!

दिलेर०—(मुसकराकर) बेशक बिलकुल नई बात थी। दुर्गादास देखनेके लायक आदमी है।

तहव्वर०—उसे देखनेके लिए ही बादशाहने तुमको बुलाया है। तुम्हारा तो पोशाक पहनना ही खतम नहीं होता!

दिलेर०—अरे ठहरो! इस वक्त जरा आराम करनेको जी चाहता था कि हुक्म हुआ, अभी एक पागलका पीछा करो। क्या यह मामूली काम तुम नहीं कर सकते थे?

तहव्वर०—नहीं, मैं उसके साथ ज्यादह जान-पहचान बढ़ाना नहीं चाहता।—इसके सिवा—

दिलेर०—इसके सिवा ?

तहव्वर०—इसके सिवा राजपूत कौमपर मुझे एक तरहकी नफरत है। वे लोग लड़ना नहीं जानते।

दिलेर०—किस तरह ?

तहव्वर०—अरे वे लड़ते हैं, लेकिन लड़ाईका कोई कायदा मान कर नहीं लड़ते। चट तलवार निकाली और झट सिर काट डाला। अपने सिरका कुछ खयाल नहीं रखते। मैंने देखा, उसकी नजर बराबर मेरे ही इस सिरपर थी। ऐसे बेवकूफसे लड़ाई लड़नी चाहिए ?

दिलेर०—नजर शायद तुम्हारे ही सिरपर थी ?

तहव्वर०—हाँ। अरे अपने सिरका खयाल रखकर लड़ा जाता है—वह तो उधरका कुछ भी खयाल न रखकर तलवार घुमाने लगा ! दुश्मनोंकी फौजको तो उसने घुइयोंका जंगल ही समझ लिया !

दिलेर०—राजपूतोंकी फौज कितनी है ?

तहव्वर०—कोई ढाई सौ होगी।

दिलेर०—जाओ तहव्वरखाँ, पाँच हजार मुगल-सिपाहियोंको तैयार होनेका हुक्म दो। जो लोग जानकी पर्वा न करके जंगमें जुट जाते हैं उन्हें एक खौफनाक कौम समझना चाहिए; उनसे सोच-समझकर भिड़ना चाहिए। पाँच हजार मुगल-सवार—समझे ?—जाओ।

(तहव्वरका प्रस्थान)

दिलेर०—(अपने मनमें) यह राजपूत कौम बेशक बड़ी दिलेर कौम है। लेकिन बादशाहके इस हुक्मका तो कुछ मतलब समझमें

नहीं आता । उन्होंने जसवन्तसिंहको कत्ल करा डाला, इसलिए कि उनसे बादशाह खौफ खाते थे । लेकिन अब राजा साहबकी रानी और बच्चेपर यह नाराजगी—यह सितम—किस लिए है ?—चलूँ ...में बीबी और बच्चोंसे मिल लूँ । मुमकिन है कि लड़ाईसे न लौटूँ ।

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य ।



स्थान—मेवाड़के राणा राजसिंहका महल ।

समय—तीसरा पहर ।

[राजकुमार जयसिंहकी अभी ब्याहकर लाई हुई दूसरी स्त्री कमलादेवी अकेली खड़ी हुई है ।]

कमला०—(आप-ही-आप) कैसा तुमको पेंचमें डाला है स्वामी ! अब उसीमें भरमते रहो ! बड़ी रानी तो जैसे सन्नाटेमें आ गई हैं ! एक दूसरे आदमीने आकर इतने थोड़े दिनोंमें उनके मुँहका कौर छीन लिया ! कैसे दुखकी बात है !—हाः हाः हाः—मन्त्र जानती हूँ बड़ी रानी, मन्त्र जानती हूँ !—खूब हुआ ! ऐसे स्वामी,—राना राजसिंहके पुत्र,—ऐसे स्वामीको अकेले पाकर अपने सुखकी सामग्री बनाना चाहती थीं बड़ी रानी ? लाज भी नहीं आई !—राजाके यही पुत्र तो मेवाड़के राणा होंगे । और तुमने अकेले रानी होना विचारा था ? पर यह हो नहीं सकता बड़ी रानी ! कैसे चील्हकी तरह झपट्टा मारकर छीन लिया है !—क्यों ? रानी होओगी ? होओ ! और भीमसिंह तुम राणा होओगे ? हो चुके । राणाने अपने हाथसे मेरे स्वामीके हाथमें 'राखी' बाँध दी है, जानते हो ? जेठजी ! इसकी कुछ खबर है ? इसके सिवा मेरे स्वामी ही तो राणाको

प्यारे हैं। करोगे क्या भीमसिंह?—दोनों भाइयोंमें खूब झगड़ा ठनवा दिया है! भीमसिंह अभीसे जायँ, दूर हों, ऐसी ही चाल लड़ाई है। उस चालमें तुमको मात खानी ही पड़ेगी। उसके बाद महाराणा जयसिंह मेवाड़के राणा होंगे और श्री ६ कमलादेवी मेवाड़की महारानी बनेंगी—और तुम बड़ी रानी—हट जाओ—बड़ी रानी!—खिसक जाओ!

[चिल्लाती हुई एक धायका प्रवेश।]

धाय—अरे बाप रे!

कमला—क्या हुआ?

धाय—अरे बापरे! एकदम महाभारत—ऐसा काण्ड कभी देखा नहीं था जी—अरे बापरे!

कमला—मर हरामजादी! मैं पूछती हूँ, हुआ क्या?

धाय—अरे एकदम लंकाकांड है, और क्या?

कमला—अरे कह तो सही, हुआ क्या?

धाय—यही छोटे कुँअर—यही जयसिंह—तुम्हारे स्वामीजी—

कमला—हाँ—उन्होंने क्या किया?

धाय—उन्होंने, यही बड़े कुँअर जो भीमसिंह हैं—उनके पैरमें तलवार निकालकर एक हाथ—अरे बापरे, एकदम खूनकी नदी!

कमला—ऐं! उसके बाद?

धाय—उसके बाद फिर क्या?—बड़े कुँअर भीमसिंहने छोटे कुँअर जयसिंहकी गर्दन पकड़ ली, इसी समय राणासाहब पहुँच गये। आकर उन्होंने बड़े कुँअरको बहुत बका-झका—वे एक दम सातों काण्ड रामायण सुना गये। भीमसिंहने एक बात भी नहीं कही। चुपचाप बाहर चले गये। बेचारेका चेहरा उदास हो गया।

कमला—अच्छा हुआ ।

धाय—यह तुम क्या कह रही हो ! बड़े कुँअर बहुत अच्छे स्वभावके आदमी हैं । देशभरके आदमी उन्हें अच्छा कहते हैं । और छोटे कुअँर भी अच्छे हैं । मैंने तो उन्हें अपने हाथों खिलाया है ।—मारे झगड़ोंकी जड़ बस तुम्हीं हो बहू ।

कमला—चुप हरामजादी !

धाय—अरे बापरे ! यह तो एकदम ताड़का देख पड़ती है ।

(धाय जान लेकर भागती है)

कमला—(आप-ही-आप) क्या ! यहाँतक नौबत आ गई ? यहाँतक बात बढ़नेकी बात तो मैंने भी नहीं सोची थी । खैर, बुरा ही क्या है ! पहलेहीसे फैसला हो जाना चाहिए ।

[सरस्वतीका प्रवेश ।]

सरस्वती—कमला, यह क्या तुम्हारे योग्य काम हो रहा है बहन ? जानती हो, आज क्या हुआ है ?

कमला—सो तो जानती हूँ—मगर इसमें मैंने क्या किया ?

सरस्वती—स्वामीको बराबर तुम बड़े भाईके विरुद्ध बहकाती हो—जोश दिलाती हो ।

कमला—कौन कहता है ?

सरस्वती—मैं कहती हूँ ।

कमला—झूठ बात है । जेठजी ही तो झगड़ा खड़ा करते हैं—उनकी नजर सदासे मेवाड़की गद्दीपर है । यही तो उनका दोष है ।

सरस्वती—छोटी रानी, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है, वे इस गद्दीको नहीं चाहते,—और अगर उनकी नजर इस गद्दीपर हो भी, तो उसमें अनुचित क्या है ? बड़े भाई तो वे ही हैं !

कमला—हाँ, घंटे दो घंटेकी बड़ाई–छुटाई जरूर है । मगर राणा साहबने खुद छोटे कुँअरके, पैदा होनेके दिन, राखी बाँध दी है । इसीके कारण तो झगड़ा है ।

सरस्वती—अगर यही सच है तो हमें यह चेष्टा क्यों न करनी चाहिए कि जिसमें यह भाई भाईका विरोध मिटकर दोनोंमें प्रेम बढ़े, जिसमें यह काला बादल, वज्र न गिराकर, पानी होकर बरस जाय और उससे प्रेमकी बेल लहलहा उठे, जिसमें यह आग सब जलाकर राख न कर दे, बल्कि दो हृदयोंको गलाकर एकमें ढाल दे ।

कमला—मैं इस बातपर तुम्हारे साथ विचार करना नहीं चाहती। अपने स्वामीकी बात मैं आप समझ लूँगी।

सरस्वती—बहन, क्या वे तुम्हारे ही स्वामी हैं, मेरे कोई नहीं हैं ?

कमला—तो तुम्हीं उनसे समझाकर कहो। मेरे साथ झगड़ा करने क्यों आई हो ? (प्रस्थान)

सरस्वती—मैं उनसे समझाकर कहूँ ? हाय रे भाग्य ! एक दिन ऐसा था, जब वे मेरी बात सुनते थे । उसके बाद तुमने आकर उन-पर कौनसा जादू कर दिया, सो तुम्हीं जानो बहन !

[जयसिंहका प्रवेश ।]

जयसिंह—कौन ? सरस्वती ? मैं समझा था, कमला ।

सरस्वती—समझे थे, सच ? इतनी बड़ी भूल की थी ? किन्तु वह भूल इतनी जल्दी क्यों मालूम पड़ गई ? वह भूल समझनेके पहले मुझे कमला जानकर, एक बार प्राणेश्वरी कहकर, पुकारा क्यों नहीं मैं भूलसे ही एक बार समझती कि मुझे पुकार रहे हो ! मुझे भी वह

भूल मालूम पड़ जाती, लेकिन भूलसे ही घड़ीभरके लिए स्वर्गीय सुखका अनुभव कर लेती !

जयसिंह—सरस्वती, मैं अब जाता हूँ। मुझे एक जरूरी काम है।

सरस्वती—जरा ठहरो।—मैं तुम्हें अपने हृदयका जोश जतानेके लिए नहीं ठहराती। जो चला गया वह तो अब लौट नहीं सकता—सुनो, एक बात पूछती हूँ। बड़े भाईके साथ आज फिर झगड़ा किया था ?

जयसिंह—उसमें मेरा दोष नहीं है।

सरस्वती—उन्हींका दोष है ?

जयसिंह—मैंने क्रोधमें आकर उनके पैरमें तलवार मार दी थी, उन्होंने मेरी गर्दन पकड़ ली थी।

सरस्वती—तो इसमें उन्हींका दोष ठहरा ?—प्रभु, तुम तो ऐसे नहीं थे, छोटी रानी ही तुमको सब नाच नचा रही है। भाई भाई आपसमें मत लड़ो स्वामी ! अगर छोटी रानीने तुमको यह सुझाया हो कि जेठजी मेवाड़की गद्दी लेना चाहते हैं, तो यह सरासर झूठ है। जेठजी एक उदार महापुरुष हैं।

जयसिंह—और मैं नीच हूँ !—खूब !—

सरस्वती—मैंने यह नहीं कहा। मैं यह कहती हूँ कि तुम्हारे कानोंमें जो ऐसी बातें भर रहा है वह नीच है—वह तुम्हारा हित-चिन्तक नहीं है। वह तुम्हारा सर्वनाश कर रहा है। लो वे जेठजी आ रहे हैं। मैं जाती हूँ। स्वामी, जो तुममें कुछ भी मनुष्यत्व रह गया हो, तो अभी अपने भाईसे क्षमा-प्रार्थना कर लो।　　(प्रस्थान ।)

[भीमसिंहका प्रवेश ।]

भीमसिंह—(कोमल स्वरसे) जयसिंह—भाई !

(जयसिंहने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया ।)

भीमसिंह—जयसिंह, भाई, मैंने ही अनुचित किया। मुझे क्षमा करो ।

(जयसिंहने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया ।)

भीमसिंह—भाई, उस समय मैं क्रोधको संभाल नहीं सका। मुझे उचित था कि छोटे भाईको क्षमा करता ।—भाई, मुझे क्षमा करो ।

[राणा राजसिंहका प्रवेश ।]

राणा—(भीमसिंहसे) क्यों भीमसिंह, जयसिंहने तलवार मारकर तुम्हें चोट पहुँचाई है ?

भीम०—नहीं पिताजी, वह चोट बहुत हलकी है ।

राणा—मुझे यह नहीं मालूम था। धायकी जबानी मालूम हुआ। उसके बाद उस जगह रक्तकी रेखा देखकर जान पड़ा कि धायका कहना सच है ।—देखूँ, चोट लगी है ?

भीम०—चोट बहुत हलकी है पिताजी !

राना—देखूँ ।

(भीमसिंह दाहिना पैर दिखाते हैं ।)

राणा—हूँ !—भीम ! पुत्र ! मैंने बिना देखे ही विचार किया । मेरा वह विचार अन्याय था । दण्ड तुमको नहीं, जयसिंहको देना चाहिए था । यह लो मेरी तलवार---मेरी ओरसे तुम इसे दण्ड दो ।

भीम०— नहीं पिताजी, अन्याय मैंने ही किया । जयसिंह अभी नासमझ है ।

राणा—नहीं भीमसिंह, मैं अन्याय-विचार नहीं कर सकता। लोग कहते हैं मैं जयसिंहको प्यार करता हूँ। यह हो सकता है; किन्तु विचारमें मैं न्याय ही करूँगा।

भीम०—मैं उसे क्षमा करता हूँ।

राना—नहीं भीमसिंह, दण्ड दो। और एक बात मैं देखता हूँ कि कुछ दिनोंसे, चाहे जिस कारणसे हो, तुम दोनों भाइयोंकी बनती नहीं। आगे चलकर भी शायद तुम्हारी यह अनबन नहीं मिटेगी। दोनों भाई राज्यके लिए युद्ध करोगे। मेरे मरनेके बाद यह होनेकी अपेक्षा मेरी जिन्दगीमें ही फैसला हो जाय तो अच्छा। इससे राज्यको हानि न पहुँचेगी। यह लो तलवार। युद्ध करो।

भीम०—पिताजी, मैं राज्य नहीं चाहता। मैं कसम खाता हूँ कि राज्यके लिए जयसिंहसे झगड़ा न करूँगा।

राणा—इसका प्रमाण क्या है?

भीम०—मैं इसी घड़ी यह राज्य छोड़कर चला जाता हूँ।—प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस राज्यके भीतर अगर जलपान भी करूँ, तो मैं आपका लड़का नहीं!

राणा—(कुछ देरतक निस्तब्ध रहकर) तुमने आज बड़ी कठिन प्रतिज्ञा की है भीम,—तुम निर्दोष हो; जयसिंहके दोषके कारण तुम राज्यसे जन्मभरके वास्ते निकल जाओगे! मैंने भूलसे राखी जयसिंहके हाथमें बाँध दी थी। इस समय जान पड़ता है कि राज्यकी भलाईके लिए इस राज्यको छोड़कर तुम्हारा चला जाना ही ठीक है। किन्तु स्मरण रखना भीम, तुम यह स्वार्थत्याग राज्यकी भलाईके विचारसे कर रहे हो!

भीम०—आपके चरणोंकी ऐसी कृपा हो कि मैं इस राज्यकी भलाईके लिए ही अपने प्राण अर्पण कर सकूँ। प्रणाम पिताजी, (जयसिंहसे) भाई, आशीर्वाद देता हूँ कि तुम विजयी और यशस्वी होओ।

(प्रस्थान)

राणा—मेरा सच्चा लड़का है।—जयसिंह ! वीरता किसे कहते हैं, देखो और सीखो।

(एक ओरसे राणा और दूसरी ओरसे जयसिंह जाते है।)

पाँचवाँ दृश्य।



स्थान—दिल्लीमें जसवन्तसिंहका महल; दुमंजिलेका बरामदा।

समय—तीसरा प्रहर।

[दुर्गादासके भाई समरदास और जोधपुरके सामन्त लोग उत्तेजित भावसे खड़े है।]

विजयसिंह—(समरदाससे) तो तुम हम लोगोंके विचारको व्यर्थ कर आये ?

समरदास—क्रोधको सँभालना और कपटकी बातें करना मैंने सीखा ही नहीं।

मुकुन्दसिंह—तो फिर तुम वहाँ गये क्यों ?

समरदास—जानेका एक मतलब था।—मैं उस पापी नरपिशाचको एक बार सामने खड़े होकर अच्छी तरह देखना चाहता था। मैं बादशाहसे कोई प्रार्थना करने नहीं गया था। वह काम दुर्गादास करें। मुझमें कौशल नहीं है, चातुरी नहीं है। मेरे सहायक भगवान् हैं, और यह तलवार है।

सुबलसिंह—सेनापति अभीतक दरबारसे लौटकर नहीं आये, क्या बात है ?

विजयसिंह—बादशाहने धोखा देकर उन्हें कैद तो नहीं कर लिया!

समरदास—(उत्तेजित भावसे) क्या यह भी संभव है ?

सुबल०—कभी नहीं । हमारे सेनापति अच्छी तरह सोचे-समझे बिना किसी काममें हाथ नहीं लगाते ।

मुकुन्द०— इस दुर्दिनमें हम लोगोंको उन्हींका एक सहारा है । यह तुरहीका शब्द सुन पड़ता है ।—लो, वे सेनापति अपने घोड़ेको बेतहाशा भगाये चले आ रहे हैं ।

विजय०—वे आ ही गये । चलो नीचे चलें । सुनें, क्या खबर है ।

सुबल०—जरूरत क्या है ? सेनापतिको यहीं न आने दो ।

[नेपथ्यमें दुर्गादासका स्वर सुन पडता है ।]

' तैयार रहो, तैयार रहो । '

समर०—तैयार ! किस लिए ?

सुबल०—वे देखो दुर्गादास उपर ही आ गये ।

[पसीनेसे तर दुर्गादासका प्रवेश]

दुर्गा०—सब लोग तैयार हो जाओ ।

समर०—किस लिए ?

दुर्गा०—अपनी रक्षाके लिए ।

विजय०—क्या खबर है, सुनें तो ?

दुर्गा०—विस्तारके साथ कहनेके लिए समय नहीं है विजयसिंह ! जसवंतसिंहजीकी रानीको बादशाह नहीं छोड़ेगा; वह उनको पकड़ना चाहता है ।—महारानी और उनके पुत्रको बचाना होगा ।—अभी मुगल-सेना आकर इस घरको घेर लेगी ।

विजय०—फिर उपाय क्या है ?

दुर्गा०—यही उपाय है कि हम लोग प्राण देनेके लिए तैयार हो जायँ। मित्रो, भाइयो, महारानीके लिए प्राण देनेको कौन कौन तैयार है ?

सब—हम सभी तैयार हैं।

दुर्गा०—किन्तु, केवल प्राण देनेसे ही काम न होगा। महारानी और कुँअरको ऐसी जगह पहुँचाना चाहिए, जहाँ खटका न हो।

[रानीका प्रवेश।]

रानी—(स्थिर स्वरसे) जसवंतसिंहकी रानीके लिए कुछ खटका नहीं है। उसके लिए चिंता न करो दुर्गादास, उसके पुत्र-को—जोधपुरनरेशके कुलदीपकको—बचाओ। इस वंशकी रक्षा करो। रानीके लिए भय नहीं है। वह मरना जानती है।—बच्चेको बचाओ दुर्गादास !

दुर्गा०—कुँअरको बचानेमें कोई कसर न रहेगी महारानी. कुँअ-रको ले आइए।

[रानीका प्रस्थान]

दुर्गा०—विजयसिंह, कासिमको बुलाओ।

(विजयका प्रस्थान)

दुर्गा०—भाई, बाहर एक मिठाईका झाबा रक्खा है, उसे ले आओ।

समर०—मिठाईका झाबा ! किस लिए ?

दुर्गा०—यह बतानेके लिए समय नहीं है भाई,—जाओ ले आओ। (समरसिंहका प्रस्थान)

दुर्गा०—लो मुकुन्ददास !—यह कासिम आ गया ।

[विजयसिंहके साथ कासिमका प्रवेश ।]

कासिम—(दुर्गादासको बन्दगी करके) सरदार, क्या हुक्म है ?

दुर्गा०—कासिम, तुमको एक काम करना होगा। राजकुमारकी जान बचानी होगी । मुगलोंकी सेना अभी आयगी कुँअरको छीननेके लिए !—तुम्हें उन्हें बचाना होगा ।

कासिम—जिस तरह आप कहिए, मैं कुँअरकी जान बचानेके लिए तैयार हूँ ।

[झाबा लिये समरदासका प्रवेश ।]

दुर्गा०—तुम इसी मिठाईके झाबेमें कुँअरको रखकर ऊपरसे कपड़ा ढककर ले जाओ । तुम मुसल्मान हो, तुमपर किसीका सन्देह न होगा ।—समझे ?

कासिम—कहाँ जाना होगा सरदार ?

दुर्गा०—दूरपर वह मन्दिरका कलश देख पड़ता है ?

कासिम—हाँ, देख पड़ता है ।

दुर्गा०—उसी मन्दिरके पुजारीके पास कुँअरको छोड़ आओ । उसके बाद जो करना होगा सो पुजारीको माल्म है । मुगलोंकी सेना आती ही होगी । तुम अभी जाओ ।

कासिम—बहुत अच्छा सरदार, मैं कुँअरके लिए जानतक दे सकता हूँ ।

दुर्गा०—सो मैं जानता हूँ कासिम,—नहीं तो यह काम तुमको न सौंपता ।

[कुँअरको लिये रानीका प्रवेश ।]

दुर्गा०—रानीजी, कुँअरको कासिमके हाथमें दे दीजिए ।—कोई डर नहीं है—मैं कहता हूँ ।

रानी—तुम कहते हो तो मुझे कुछ डर नहीं है दुर्गादास !—कासिम, तुम्हारे भी धर्म है।

कासिम—कोई डर नहीं है रानीसाहब, मैं कुँअरको अपनी जानसे बढ़कर समझूँगा।

(कासिमका रानीके हाथसे कुँअरको लेना।)

रानी—(फिर कासिमके हाथसे कुँअरको लेकर चूमकर गद्गद स्वरसे) मेरे प्यारे बेटा!

दुर्गा०—दीजिए।—अब समय नहीं है।

रानी—(फिर कुँअरको चूमकर और कासिमके हाथमें देकर) धर्म साक्षी है कासिम !

कासिम—मैं खुदाको गवाह करता हूँ। कोई डर नहीं है।

(बच्चेको झाबेमें रखकर झाबेको कासिमने सिरपर रक्खा।)

समर०—अगर राहमें कासिमको कोई पकड़ ले?

रानी—अगर कोई पकड़ ले कासिम, तो यह छुरी कुँअरके कलेजेमें भोंक देना। जीतेजी कुँअरको कोई औरंगजेबके पास न ले जा सके।

(छुरी देना।)

दुर्गा०—कोई डर नहीं है रानीसाहब !—जाओ कासिम, इस पीछेके चोर-दरवाजेसे निकल जाओ,—आओ, रास्ता दिखा दें।

(झाबा लेकर कासिमका प्रस्थान। उसके पीछे दुर्गादास और उनके पीछे रानीका जाना।)

विजय०—दुर्गादास, धन्य है तुम्हारी समयपरकी सूझ-बूझको !

सुबल०—यह मैं निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि बादशाहके पास जानेके पहले ही दुर्गादास यह सब प्रबन्ध कर गये थे।

मुकुन्द०—लो, वह मुगलसेना आ रही है।

विजय०—यह तो बेशुमार सेना है।

सुबल०——साथमें खुद सेनापति दिलेरखाँ हैं ।

[दुर्गादासका फिर प्रवेश ।]

दुर्गा०——बस, अब कोई चिन्ता नहीं रही । मुगलसेना आ गई है——अब तुम लोग मरनेके लिए तयार हो जाओ ।

विजय०——और स्त्रियाँ ?

दुर्गा०——उनका भी उपाय किये देता हूँ । बादशाहके पास जानेके पहले ही इस बारेमें क्यों न सोच समझ लिया ?——बुलाओ स्त्रियोंको भैया !

(समरदासका प्रस्थान ।)

मुकुन्द०——वह देखो मुगलसेना आ गई !

विजय०——गोलियाँ चला रहे हैं !

सुबल०——दरवाजा तोड़नेकी चेष्टा कर रहे हैं !

मुकुन्द०——आग जला रहे हैं, शायद इस घरमें आग लगावेंगे ।

दुर्गा०——अब हम स्त्रियोंके लिए कुछ प्रबन्ध न कर सकेंगे—समय नहीं है ।

[स्त्रियोंके साथ समरदासका प्रवेश ।]

दुर्गा०——माताओ, बेटियो, बहिनो, आज तुम्हारे लिए बहुत ही कड़ी व्यवस्था करनी पड़ी । आज तुमको आगमें जलकर मरना होगा ।

एक प्रौढ़ा स्त्री——यह तो हम लोगोंके लिए कोई नई बात नहीं है सेनापति, हम क्षत्रियोंकी——वीरोंकी——स्त्रियाँ हैं, मरना जानती हैं।

दुर्गा०——और उपाय नहीं है माताओ, हम लोग मरने जाते हैं। तुम सब भी जाओ । उस कमरेमें जाओ; उस कमरेमें बारूद भरी है। उसमें केवल तुम लोगोंके खड़े रहनेभरके लिए जगह है । बारूदके ऊपर जाकर खड़ी हो जाओ, उसके बाद और क्या कहूँ माताओ !——

एक स्त्री—उसके बाद हम अपने हाथसे आग लगा देंगी। चलो बहिनो !

[बाल खोले रानीका प्रवेश।]

स्त्रियाँ—महारानीकी जय हो।

रानी—जय? हमारी जय मौत है। मरने जाती हो?—जाओ! जाओ स्वर्गधाममें! मैं आज तुम्हारे साथ न जाऊँगी। मैं आज अगर हो सका तो अपनेको बचाऊँगी।—मैं अभी मरना चाहती थी दुर्गादास, पर नहीं, अभी मैं नहीं मरूँगी। ऊपर आकाशसे मानो मुझसे कोई कह रहा है—'अभी समय नहीं आया—तुम्हारा काम बाकी है।' मुझे रहना होगा। दुर्गादास, अगर हो सके तो मुझे आज बचाओ। (घुटनोंके बल बैठकर और हाथ जोड़कर) ईश्वर, आज मेरी रक्षा करो! (उठकर) उसके बाद—उसके बाद—देशमें आग सुलगाऊँगी, ऐसी आग सुलगाऊँगी कि सात समुद्रोंका पानी भी उसे बुझा न सकेगा!

दुर्गा०—हो सकेगा तो हम आज प्राण देकर महारानीकी रक्षा करेंगे।—तुम सब माताओ! जाओ, फाटक शत्रुओंकी लातोंसे टूटना ही चाहता है।

(रानीके सिवा और स्त्रियोंका प्रस्थान।)

रानी—तो फिर चलो दुर्गादास।—ठहरो। मैं अपनी लड़की ले आऊँ, उसे छोड़ न जाऊँगी। छातीसे लगाकर ले जाऊँगी।—तुम सब चलो। (प्रस्थान)

दुर्गा०—भाई!

समर०—भाई!

दुर्गा०—तो फिर चलो मरने।

समर०—चलो।

दुर्गा०—जरा ठहरो, स्त्रियोंका अन्त देखते चलें। यह—यह—(दूरपर भयानक शब्द सुन पड़ता है) सब समाप्त हो गया!—बस अब चलो।

समर०—चलो।

दुर्गा०—भाई, शायद यही आखरी मुलाकात हो। आओ, एक बार गलेसे मिल लें।

(दोनों मिलते हैं और पर्दा गिरता है।)

छट्ठा दृश्य।



स्थान—बादशाहका जनाना महल।

समय—प्रातःकाल।

[औरंगजेब अकेले टहल रहे हैं।]

औरंग०—क्या जसवंतकी रानी सिर्फ ढाई सौ राजपूतोंकी मददसे पाँच हजार मुगल सिपाहियोंके बीचसे निकल गई?—और उस मुगल-फौजके साथ खुद दिलेरखाँ मौजूद था?—इसमें जरूर कुछ खास बात है!—दरबान!—

नेपथ्यमें—खुदावन्द!—

औरंग०—सिपहसालार दिलेरखाँको हाजिर करो।

नेपथ्यमें—जो हुक्म।

औरंग०—(आप-ही-आप) अब मैं बेगमको किस तरह मुँह दिखाऊँगा?—अपनी इस बेइज्जतीके खयालसे मेरे तन-बदनमें आगसी लग रही है।

(तेजीके साथ गुलनारका प्रवेश ।)

गुलनार---बादशाह सलामत, यह जो सुनती हूँ, सो क्या सच है ?

औरंग०— क्या ?

गुलनार— यही खबर कि जसवंतकी रानी सिर्फ ढाइ सौ फौजकी मददसे पाँच हजार मुगलोंके बीचसे चली गई ।

औरंग०—हाँ बेगम, सच है ।

गुलनार— तुम अपनी इसी फौज, इसी सिपहसालार और इसी ताकतसे हिंदोस्तानपर हुकूमत करने बैठे हो ?

औरंग०—प्यारी--

गुलनार---बस, अब अपना प्यार और दुलार रहने दीजिए जहाँ-पनाह, मैंने अपनी एक मामूली ख्वाहिश पूरी करनेके लिए कहा था–उसका यह अंजाम हुआ ।

औरंग०---जहाँ तक मुझसे हो सका, मैंने कोई बात उठा नहीं रक्खी ।

गुलनार— तुमने कोई बात उठा नहीं रक्खी ?–तुम्हारी ताकत इतनी ही है ?–तुम कहना चाहते हो, आज तुम्हारे हाथमें पड़कर मुगल-बादशाहत इतनी कमजोर हो गई है कि एक औरत–सिर्फ ढाई सौ राजपूतोंको साथ लेकर–हिंदोस्तानके बादशाहकी छातीपर लात रखती चली गई !—अफसोस है ! लानत है !

[औरंगजेबने कुछ नही कहा ।]

गुलनार— जसवंतकी रानी इस वक्त कहाँ है ?

औरंग०—शायद वह राणा राजसिंहके यहाँ मेवाड़में होगी ।

गुलनार—मेवाड़पर चढ़ाई करो---मैं जसवंतकी रानी और उसके कुँअरको चाहती हूँ ।

औरंग०---गुलनार, इसपर गौर किया जायगा ।

गुल्नार---गौर ?---बेगम गुलनारका कहना ही क्या बादशाह औरंगजेबके माननेके लिए काफी नहीं है ?---गौर !---सुनो, मेरी एक बात सुनो, जसवन्तकी रानीको मेरे आगे हाजिर होना ही चाहिए । वह चाहे आसमानमें हो, चाहे जमीनपर हो और चाहे जमीनके नीचे हो, मैं उसे चाहती हूँ । मेवाड़पर चढ़ाई करो ।

औरंग०---बेगम---

गुलनार---मैं कुछ सुनना नहीं चाहती । मेवाड़पर चढ़ाई करो ।

(गहरे रूठनेका भाव दिखाकर गुलनार चली जाती है और औरंगजेब अकेले यहाँ वहाँ टहलने लगते हैं ।)

औरंग०---(आप-ही-आप) मुझे इस बातपर यकीन नहीं होता । सिर्फ ढाई सौ राजपूत, पाँच हजार मुगलोंकी फौजके बीचसे निकल गये ! इसमें जरूर दगाबाजी है ।---लेकिन इसपर ही कैसे यकीन कर लूँ कि सिपहसालार दिलेरखाँ दगाबाजी करेगा ? मेरा बचपनका दोस्त, जवानीका मददगार, बुढ़ापेका सलाहकार दिलेरखाँ---सच्चा, सीधा और ऊँचे खयालका दिलेरखाँ मुझसे दगा करेगा ? मैं यकीन नहीं ला सकता । लेकिन ढाई सौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंकी फौजको चीरते-फाड़ते निकल गये और उस मुगलोंकी फौजका सरदार दिलेर---निडर और बहादुर खुद दिलेरखाँ था, इसपर ही कैसे यकीन लाऊँ ? जरूर इसके भीतर कोई खास बात है ।---वह दिलेरखाँ आ गया ।

[दिलेरखाँका प्रवेश ।]

दिलेर०---बन्दगी जहाँपनाह !

औरंग०---दिलेरखाँ, मैंने तुमको यह दर्याफ्त करनेके लिए बुला भेजा है कि यह बात क्या सच है कि---

दिलेर०—बादशाह सलामतने जो सुना है वह बिल्कुल ठीक है।

औरंग०—मुझे बात पूरी कहने दो—यह बात सच है कि नहीं कि सिर्फ ढाई सौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंको काटते हुए उनके बीचसे निकल गये?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह, यह बात बिल्कुल सच है।

औरंग०—और उस फौजके सरदार खास तुम थे?

दिलेर०—हाँ हुजूर!

औरंग०—लड़ाई हुई थी?

दिलेर०—हुजूर, इस लड़ाईमें पाँच हजार मुगल जवानोंमें शायद पाँच सौ बचे होंगे, और राजपूतोंमें शायद पाँच जवान।

औरंग०—और जसवन्तकी रानी?

दिलेर०—वह सरदारोंके साथ उदयपुरकी तरफ गई है।

औरंग०—उसका बच्चा?

दिलेर०—बच्चा तो उस फौजमें देख नहीं पड़ा हुजूर! हाँ, रानी एक तीन बरसकी लड़कीको अपनी छातीसे जरूर बाँधे हुए थी।

औरंग०—मुगलोंकी फौज क्या भेड़-बकरोंसे भी गई-गुजरी है? एक औरतको पाँच हजार जवान न रोक सके? उसके साथ सिर्फ ढाई सौ राजपूत थे?

दिलेर०—मालूम नहीं जहाँपनाह, लेकिन जब वह औरत मुगलोंकी फौजके आगे आकर खड़ी हो गई—उसका मुँह खुला हुआ था, बाल बिखरे हुए थे, छातीसे लगी हुई लड़की सो रही थी—तब महारानीकी ढाई सौ फौज ढाई लाख जान पड़ने लगी। मुगलोंकी फौजकी काली घटाके ऊपरसे बिजलीकी तरह रानी निकल गई! उसे छूनेकी किसीको हिम्मत नहीं हुई!

औरंग०—और तुम ?

दिलेर०—मैंने दूरपर खड़े खड़े माकी वह अजीब मूरत देखी! कहना चाहा कि 'पकड़ो जसवन्तकी रानीको' मगर मुँहसे आवाज नहीं निकली! तलवार निकालनी चाही—तलवार नहीं उठी! पिस्तौ-ली—पिस्तौल हाथसे गिर पड़ी!

औरंग०—दिलेरखाँ, तुम क्या पागल हो गये हो?

दिलेर०—शायद हो गया हूँ। मालूम नहीं। लेकिन उसी दम जान पड़ा, मानो मैं एक और ही आदमी हो गया हूँ। दम भरमें मानो किसीने आकर मेरे दिलके दरवाजेपर धक्का मारकर बंद दरवाजेको खोल दिया! मुझे दूसरी ही दुनिया देख पड़ी!

औरंग०—इसीसे तुम पत्थरकी तरह पाँच हजार फौज लिये खड़े खड़े देखा किये?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह, देखा, वह एक निराली ही झलक थी! उस पीकदामनी[1] शान और बहादुरीके रौबमें जैसे जादू भरा था जहाँपनाह, तअज्जुब! बाल बिखेरे, छातीपर सोती हुई लड़की लिये रानी बेधड़क हमारी फौजके आगे खड़ी हो गई! क्या कहूँ जहाँपनाह, कैसा वह नजारा[2] था। वह माकी मूरत सुबहसादिक[3]से भी साफ, बीनकी आवाजसे भी सुरीली और खुदाके नामसे भी पाक थी! मैं जैसेका तैसा खड़ा रहा—मुझसे कुछ करते न बना।

औरंग०—उसके बाद?

दिलेर०—उसके बाद रानीके चले जानेपर होश हुआ। चिल्ला उठा—'पकड़ो!' उसी समय हमारी ५००० तलवारें उस शामकी

---

१ सतीत्व। २ दृश्य। ३ उषःकाल।

धुँधली रोशनीमें चमक उठीं। दुश्मन लोग घूमकर खड़े हो गये। लड़ाई छिड़ गई। आदमी, भूकम्पमें बालूके ढूहकी तरह, जमीनपर गिरने लगे। लड़ाई खत्म होनेपर देखा, हमारे यहाँके पाँच सौ जवान बचे हैं; दुश्मनोंका एक आदमी भी नहीं। लाशोंमें दुर्गादास और उसके भाईका पता नहीं लगा।

औरंग०—दिलेर, तुमसे औरत अच्छी! जाओ।

(एक ओरसे औरंगजेब और दूसरी ओरसे दिलेरखाँका प्रस्थान।)

सातवाँ दृश्य।



स्थान—राणा राजसिंहके महलका बाहरी हिस्सा।

समय—तीसरा पहर।

[ऊँचे आसनपर राणा राजसिंह बैठे हैं। सामने बच्चेको गोदमें लिये जसवन्तसिंहकी रानी महामाया घुटने टेके बैठी है। दाहिनी ओर दुर्गादास और कासिम खड़े हैं।]

रानी—राणा, मेरे इस बच्चेको अपने गढ़में स्थान दीजिए। बहुत दिनोंके लिए नहीं राणा, थोड़े ही दिनोंके लिए।

राज० महामाया, तुम्हारा लड़का मेरा गैर नहीं है। राजपुत्रकी रक्षाके लिए यों गिड़गिड़ानेकी क्या जरूरत है?—दुर्गादास, औरंगजेब क्या इस बच्चेके भी प्राण लेना चाहते हैं?

दुर्गा०— नहीं तो इसके पकड़नेका और क्या उद्देश हो सकता है महाराणा?

रानी—राणाजी, एक लड़का और लड़की—केवल यही संपत्ति लेकर उस दिन दिल्लीसे निकली थी। राहमें लड़की मर गई। अब मेरी

सम्पत्तिमें केवल यही दूध-पीता बच्चा बचा है। मेरे इस सर्वस्व पुत्रकी रक्षा कीजिए महाराणा, ईश्वर आपका भला करेंगे।

राज०—पुत्रके लिए कुछ भी चिंता न करो महामाया, मैं अपने प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा।

रानी—राणाजीकी जय हो।

राज०—दुर्गादास, औरंगजेबके अत्याचारकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ती चली जा रही है। उन्होंने हिन्दुओंके ऊपर फिरसे 'जिजिया' लगाया है। उसके ऊपर मारवाड़-पति जसवंतसिंहके परिवारपर ऐसा दारुण अन्याय!—देखूँ, पत्र लिखकर शायद औरंगजेबको ठीक राहपर ला सकूँ।

रानी—पत्र लिखकर? अनुनय-विनय करके? घुटने टेककर? भीख माँगकर? नहीं महाराणा, इस तरह ढीले पड़कर नहीं। अबकी इस बादशाहतको जड़से उखाड़े बिना मेरे कलेजेमें ठंडक नहीं पड़ेगी।

राज०—नहीं महामाया, रक्तकी नदियाँ बहाये बिना यह काम नहीं हो सकता। जब एक राज्य स्थापित हो गया है तब उसे जड़से उखाड़नेकी चेष्टा करना अन्याय है। इसमें हजारों आदमियोंकी व्यर्थ हत्या होगी और देशकी प्रजाको कष्ट मिलेगा।

रानी—अपने देशमें दूसरी जातिके राज्यकी रक्षा?—यही क्या क्षत्रियोंका धर्म है?

राज०—क्षत्रियोंका धर्म केवल मार-काट करना ही नहीं है। मरने-मारनेकी विद्या कोई ऊँचे दर्जेकी विद्या नहीं है। किसी आर्त्तकी रक्षा या अपनी रक्षाके अलावा और किसी उद्देश्यसे मार-काट करनेका नाम हत्या है। (इसके बाद कासिमकी ओर देखकर) यह कौन है?

दुर्गादास—यह कासिमउल्ला है। मेरा पुराना मित्र है। इसने अपनी जानकी पर्वा न करके हमारे राजकुँअरकी रक्षा की है।

कासिम—राणासाहब, मैं इन लोगोंका पुराना नमकख्वार हूँ। सरदारने (दुर्गादासने) एक दफा बड़ी आफतसे मुझको बचाया था। तबसे मैं इन्हींका गुलाम हूँ।

राजसिंह—दुर्गादास, कासिम भी तो मुसलमान है!

कासिम—महाराणा, हमारी जातको बुरा न कहें। हमारी जात खराब नहीं है। हम सब हो सकते हैं, पर नमकहराम नहीं।

राज०—नहीं कासिम, मैं तुम्हारी जातिकी निन्दा नहीं करता; बादशाहके साथ तुम्हारी तुलना करता हूँ। बादशाह इस छोटे बच्चेकी जान लेना चाहते हैं—और तुम—

कासिम—आहा, जरा देखो तो, कैसा सुन्दर बच्चा है! अभी-तक आँखें नहीं खुलीं।—आहा, बच्चेने सर्दी और धूपमें बड़ा कष्ट पाया है। बेटा मेरे!—हूँ—अब टुकर टुकर देखने लगे! आहा! आँखें क्या हैं, नीले कमल हैं!

राज०—औरंगजेब, तुम दिल्लीके सिंहासनपर बैठे एक निरीह बालककी हत्या करनेके लिए व्यग्र हो रहे हो, और तुम्हारी ही जातिका यह कासिम उसे प्राण देकर भी बचानेके लिए तैयार है!—ईश्वरकी दृष्टिमें कौन बड़ा है औरंगजेब?

रानी—राणा, मैं इस भारी अत्याचारका बदला लूँगी!—इसका बदला चुकानेके लिए ही मैं उस दिन और स्त्रियोंके साथ नहीं जल मरी। इसीके लिए अबतक जिन्दा हूँ।—आप केवल इस बच्चेकी रक्षा कीजिए।

राज०—मैं कह चुका हूँ, इसके लिए कोई चिन्ता नहीं है महा-माया, तुम अपने लड़केको लेकर यहाँ बेखटके रहो ।

रानी—नहीं राणा, मैं यहाँ नहीं रहूँगी । अब यह मेरा घर नहीं है । मैं अपने स्वर्गवासी स्वामीके राज्यको लौट जाऊँगी । संपत्ति और विपत्तिमें, सुख और दुःखमें, शान्ति और अशान्तिमें, जीवन और मरणमें स्वामीका घर ही स्त्रीका घर है; पिताका घर नहीं । मैं मारवाड़ चली जाऊँगी ।

राज०—किन्तु वहाँ तो अभी तुम बेखटके नहीं रह सकतीं बहन !

रानी०—बेखटके ? मैं क्या यहाँ अपने लिए बेखटके जगह खोजने आई हूँ ? नहीं राणा, मैं उसे नहीं खोजती । मैं अब आपत्तिको खोजती हूँ । आपत्तिकी गोदमें मैं पली हूँ, भूकम्पमें मेरा जन्म हुआ है, तूफ़ानमें मेरा घर है, प्रलयके बादलोंमें मेरी सेज है ।—विपत्ति !—विपत्तिको तो मैंने अपनी सखी बना लिया है राणा ! मुझे अब और क्या विपत्ति होगी ? पति मारा गया, पुत्र मारा गया, सर्वस्व लुट गया—अब और क्या विपत्ति होगी ? मेरे लिए अब एक ही विपत्ति और हो सकती है—इस बच्चेकी हत्या । इसकी रक्षा कीजिए राणा ! और कुछ न चाहिए, इसकी रक्षा कीजिए ! मैं मार-वाड़ जाऊँगी और आग सुलगाऊँगी—आग ! ऐसी आग सुलगाऊँगी, जिसमें औरंगजेब क्या चीज है, मुगलोंका सारा राज्य जल जायगा और खाकमें मिलकर उड़ जायगा !

[पर्दा गिरता है ।]

दूसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—दिल्लीके महलके भीतरका बाग।

समय—सन्ध्याकाल।

[औरंगजेबकी पोती—अकबर शाहजादेकी लड़की—रजिया
अकेले इधर उधर गाती हुई टहलती है।]

हे दिनमणि, तुम अपनी सारी गरिमा लेकर चले कहाँ ?
अजी ले चलो साथ मुझे भी, जाते हो जिस जगह वहाँ ॥
अंधकार हो जब, तब जगमें, रहना चाहे कौन भला ?
जो चाहे सो पड़ा रहे, मैं रहना चाहूँ नहीं यहाँ ॥
सागरमें तूफान बीच आशाकी तूँबी बाँध हिये।
पड़े रहें वे जो जानें जीना ही सुख है बड़ा यहाँ ॥
जबतक जीवन रहे, रहूँ मैं सुखसे, बस अभिलाष यही।
सुखका समय समाप्त हुए पर, मैं चल दूँ सब छोड़ यहाँ ॥

[पासके एक मौलसिरीके पेड़पर एक कोयलका शब्द और रजियाका
एकाग्र होकर उसे सुनना। इसी समय गुलनारका प्रवेश।]

गुल०—रजिया !

रजिया—चुप रहो !—कोयल बोल रही है।

गुल०—कैसी पागल लड़की है ! कोयलकी आवाज और कभी नहीं सुनी ?

रजिया—सुनी क्यों नहीं ? लेकिन सुन चुकी हूँ, इसलिए क्या फिर न सुनना चाहिए ?—यह सुनो !—फिर—चुप हो रही ! क्यों

अम्मीजान ! यह दुनिया अगर एक कभी न थमनेवाली 'तान' होती, तो अच्छा होता न ?

गुल०—अच्छा होता ?—ऐसा होता तो नाकमें दम होता। एक बात भी कहनेका मौका न मिलता।

रजिया—बात !—बातके मारे ही नाकमें दम है अम्मीजान, और फिर उसके समझनेमें तो और भी आफत है ! हरएक बातके पीछे उसके 'माने' लगे हैं। क्या कहूँ, बगैर 'माने' दो कदम भी आगे बढ़ना गैर मुमकिन है। बातके साथ ही साथ 'माने' घूमते हैं।

गुल०—और गाना ?

रजिया—'माने' लगाना—समझना बड़ा कठिन है। वे सिर्फ एक उदासी मनमें ला देते हैं। उनका समझना सहल नहीं है। यही जैसे 'बेला, चमेली, चंपा, नेवारी।' इसके माने अच्छी तरह समझमें आते हैं—क्यों न ?—बेला, चमेली, चंपा, नेवारी, ये चार फूल। लेकिन (विकृत स्वरसे गलेबाजी करके) 'बेला, चमेली, चंपा, नेवारी'—इसके माने लगाओ !

गुल०—बेशक—इसके माने लगाना मुश्किल है। बहुत ही अच्छी तान है !

रजिया—नहीं अम्मीजान, तुमको गाना बिल्कुल पसंद नहीं, यह मैं जानती हूँ। लेकिन मैं गानेकी तानमें डूब रही हूँ, मगन हूँ, सराबोर हूँ। (स्वरमें गुनगुनाकर) 'बेला-चमेली-चंपा-नेवारी।'

गुल०—रजिया, तूने गाना किससे सीखा ?

रजिया—अब्बाजानके उस्तादसे। अब्बाजानको गाना गाने और सुननेका बड़ा शौक है। अब्बाजानने खुद भी कुछ गाने बनाये हैं।

उस्तादजीने उसके सुर ठीक कर दिये हैं। अब्बाजानको पुरबी रागिनी बहुत पसंद है। बहुत ही मीठी रागिनी है! (पुरबीके सुरोंमें) 'तारे ना तूम तूम तूम ना दे रे तूम'—वाह कैसी मीठी रागिनी है!

गुल०—मुरब्बेसे भी?

रजिया—अम्मीजान, तुम एकदम एक जानवर हो! एक गधेमें जितनी सुरकी जानकारी होती है—उतनी भी तुममें नहीं है!—अच्छा अम्मीजान, ये गधे क्या बेसुरे रेंकते हैं? नीचेके गांधारसे एकदम ऊपरका कोमल ऋषभ होता है।

गुल०—होगा!

रजिया—अच्छा अम्मीजान! कोयलका सुर इतना मीठा क्यों है, और कौएकी आवाज इतनी कर्कश क्यों है? मुझे जान पड़ता है, कोयलके सुरसे ही गाना ईजाद हुआ है। सा, रे, गा, मा, पा,—ठीक कोयलका सुर है।—यह सुनो—कु, कु, कू, कू, कू,—ठीक कोयलका सुर!

गुल०—बंगालमें रहनेसे तुझे गानेकी सनक सवार हो गई है। बंगालमें शायद गाने-बजानेका बड़ा चलन है?

रजिया—हाँ। मगर बंगाली लोग 'कीर्तन' बहुत गाते हैं। मैंने एक कीर्त्तन सीखा है—सुनोगी? सुनो—

बँधुया कि आर कहिव आमि!
जीवन मरने, जनमे जनमे, प्राननाथ हईयो तुमि।
तोमार चरने आमार पराने लागिल प्रेमेर फाँसि,
मन प्रान दिये सब समर्पिये निश्चय हईनू दासी।
ए कुले ओ कुले दुकुले गोकुले के आर आमार आछे,
राधा बोले आर शुधाइते नाम दाँडाबे आमार काछे।

—इसके बाद—भूल गई।—अच्छा है! क्यों?—अच्छा अम्मीजान, दादाजी गानेसे इतने चिढ़ते क्यों हैं?—वे मुझे खूब प्यार करते हैं। लेकिन अगर कभी एक तान ले लेती हूँ—तो मेरी तरफ देखकर कहते हैं—"ऐं!" और सिर हिलाते हैं।

गुल०—तेरे दादाजान तुझे बहुत प्यार करते हैं?

रजिया—ओह! बहुत प्यार करते हैं! (सुरसे) "बँधुया " तुमको प्यार करते हैं?

गुल०—मुझको?—अपने दादाजानसे जरा पूछकर देखना।

रजिया—(सुरसे) "कि आर कहिब आमि—" तुम जो करनेको कहती हो वही करते हैं?

गुल०—करते हैं। देखती नहीं है कि मेरे वास्ते एक जंग ही ठन गया है।

रजिया—जंग!—जंग किसे कहते हैं अम्मीजान?

गुल०—लड़ाईको।

रजिया—ओह!—एक आदमी एक तलवार लेता है, और दूसरा आदमी दूसरी तलवार लेता है। उसके बाद दोनों आदमी बाजेकी तालपर नाचते और घूमते हैं—यह मैंने बंगालमें देखा है। लड़ाई किसके साथ होगी अम्मीजान?

गुल०—मेवाड़के साथ।

रजिया—मेवाड़ मर्द है या औरत?

गुल०—दुर पगली लड़की!—मेवाड़ एक मुल्क है।

रजिया—बापरे! एक मुल्कके साथ लड़ाई होगी!—क्यों अम्मीजान, लड़ाई क्यों होगी?

गुल०—एक रानीको पकड़कर लानेके लिए।

रजिया—तुमने शायद दादाजानसे यही कहा है ?

गुल०—हाँ !

रजिया—उस रानीको पकड़ मँगाकार क्या करोगी ? उसे प्यार करोगी ?

गुल०—उसके मुर्देका जुलूस निकालूँगी।

रजिया—उसके जीतेजी ? मैंने तो सुना है, मरनेपर मुर्देका जुलूस निकलता है।—लो वे दादाजान और अब्बाजान आ रहे हैं।—मजा देखोगी ?

[औरंगजेब और अकबरका प्रवेश।]

रजिया—(कीर्तनके स्वरमें) "बँधुया—"

औरंग०—ऐं—रजिया !—फिर !

रजिया—लो अम्मीजान यह सुनो—हाः हाः हाः—

(हसते हसते भाग जाती है।)

औरंग०—अकबर, मैंने तुमको बंगाल भेजा था सल्तनतका कामकाज सीखनेके लिए; लेकिन मैं देखता हूँ, तुम नाच-गानमें ही मशगूल रहते हो। इस लड़की तकको गाना सिखा दिया है !—मुझे मालूम न था कि तुम ऐसे नालायक हो।

गुल०—सच बात है। लड़की गानेके सिवा और बात ही नहीं करती। दिनरात गुनगुनाया करती है, नाकमें दम कर रक्खा है !

औरंग०—उसकी जिन्दगी बरबाद किये देते हो। खैर, यह फिर देखा जायगा।—इस वक्त अकबर, तुम मेवाड़की लड़ाईमें जाओ। मैं तुम्हारी मातहतीमें ५०,००० फौज भेजता हूँ। मेवाड़पर चढ़ाई करो।

अकबर—जो हुक्म।

औरंग०—मैंने सुना है, तुम बहुत ही सुस्त, शौकीन और ऐयाश हो गये हो। तुम्हें कुछ जिन्दगीकी सख्तियाँ झेलनेकी जरूरत है। मेवाड़की लड़ाईमें जानेके लिए ही मैंने तुमको नहीं बुला भेजा है, तुम्हारा सुधार करनेके लिए ही खासकर बुलाया है। जाओ।—तयारी करो। सिपहसालार दिलेरखाँको तुम्हारी मददके लिए भेजता हूँ। मैं और आजिम दोनों 'दोवारी'में ठहरकर तुम्हारी फतहकी राह देखेंगे। —जाओ। (अकबरका चुपचाप प्रस्थान।)

औरंग०—गुलनार! तुम्हारे कहनेसे, तुम्हें खुश करनेके लिए, आज मैं एक बड़ी भारी लड़ाई छेड़ रहा हूँ।

गुल०—भारी लड़ाई! एक छोटेसे मुल्क मेवाड़से भिड़ना बड़ी भारी लड़ाई है? मैं तो समझती हूँ, हिन्दोस्तानके शाहंशाह औरंगजेबके लिए यह एक बहुत मामूली बात है।

औरंग०—यह बात नहीं है! जिस दिन ढाई सौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंकी फौजको रौंधकर चले गये, उस दिन मैंने जाना कि राजपूतोंकी जात बड़ी दिलेर है—राजपूतोंकी ऐसी हिम्मत और बहादुरी दूसरी कौममें नहीं है। इसीसे मैंने इस चढ़ाईके लिए बंगालसे शाहजादा अकबर और काबुलसे शाहजादा आजिमको बुला भेजा है। —मेवाड़पर फतेह पाना बहुत ही सहल और आसानीसे हो जानेवाला काम नहीं है।

गुल०—मैं मेवाड़को जीतना नहीं चाहती। मैं जसवन्तकी रानीको चाहती हूँ, और कुछ नहीं। उससे एक दफा मुलाकात करना चाहती हूँ।

औरंग०—अबकी जरूर मुलाकात होगी।—भीतर चलो गुलनार, पानी पड़ने लगा। (दोनोंका प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य।



स्थान—आबू पहाड़की कन्दरा।

समय—दोपहर।

[दुर्गादास और दो राठौड़ सामन्त—शिवसिंह और मुकुन्दसिंह।]

दुर्गा०—शिवसिंह और मुकुन्दसिंह, मैं कुँअरको तुम्हारी देख-रेखमें छोड़े जाता हूँ। इस स्थानके अस्तित्वकी भी खबर किसीको न होने पावे।

दोनों०—ऐसा ही होगा सेनापति।

दुर्गा०—बादशाहने बड़ी भारी फौज लेकर मेवाड़पर चढ़ाई की है। कुँअरको अब उदयपुरमें रखना ठीक न समझकर राणाजीकी आज्ञाके अनुसार यहाँ ले आया हूँ।

मुकुन्द०—बादशाहने मेवाड़पर चढ़ाई क्यों की है?

दुर्गा०—मेवाड़ने जोधपुरकी रानी और राजकुमारको आश्रय दिया है; बस यह इसका प्रधान कारण है। यह भी सुना है कि औरंगजेबके अत्याचारका—खास कर हिन्दुओंके ऊपर जिजिया कर लगानेका—प्रतिवाद करके राणाने जो पत्र लिखा था, वह पत्र ही इसका कारण है। पर वह एक बहाना है। उस पत्रकी लिखावटमें तेज और निडरपनकी झलक रहने पर भी नम्रता और सरलताकी मात्रा यथेष्ट थी। उससे बादशाहके नाराज होनेका कोई कारण न था। मैंने उस पत्रको पढ़ा है।

शिव०—आप इस युद्धमें जा रहे हैं?

दुर्गा०—मेरे प्रभुको आश्रय देनेके कारण ही यह युद्ध ठना है। मेरे यहाँ निश्चिन्त होकर बैठ रहनेसे काम नहीं चल सकता शिवसिंह! तुम दोनों इस किलेमें रहो। यहाँसे कहीं न जाना। यह किला बहुत ही एकान्त

और बहुत ही गुप्त है । यहाँ किसी तरहका खटका नहीं है । तब भी इस किलेमें पहरा देनेके लिए २०० सिपाही छोड़े जाता हूँ । अगर किसी विपत्तिकी संभावना भी हो, तो उसी घड़ी मुझे खबर देना ।

मुकुन्द०——बादशाह क्या मेवाड़पर चढ़ाई करनेके लिए रवाना हो चुके हैं ?

दुर्गा०——हाँ । बादशाहकी फौज टीड़ी-दलकी तरह मेवाड़-राज्यमें छाई हुई है । चित्तौर, नण्डलगढ़, मन्दसोर और जीड़नके किलोंको बादशाहने ले लिया है । राणा अपनी सब सेना पहाड़ी जगहपर ले आये हैं ।

शिव०——हमारी महारानी कहाँ हैं ?

दुर्गा०——मारवाड़में । उन्होंने सेनापति गोपीनाथकी अध्यक्षतामें १०,००० राठौर-सेना मेवाड़ भेजी है । खुद और भी सेना जमा करके अपने साथ लिये आ रही हैं ।——अच्छा जाओ, तुम लोग भोजन आदि करो ।　　　　(मुकुन्दसिंह और शिवसिंहका प्रस्थान)

दुर्गा०——(आप ही आप) आज मुट्ठीभर राजपूत-सेना लेकर मुगल-सेनाके सागरमें उतरता हूँ । ईश्वर जाने, इसका परिणाम क्या होगा ! एक आशा यही है कि मेवाड़ और मारवाड़ आज मिलकर——प्राणोंकी पर्वा न करके——इस युद्धके लिए तैयार हैं । चारों ओर घिरी हुई घनी घटाके अन्धकारम इतनी ही एक ज्योतिकी क्षीण रेख देख पड़ती है ।——यदि इसके साथ ही एक बार मराठा-शक्तिकी सहायता पाता । इस बिखरी हुई हिन्दुओंकी शक्तिको यदि एक बार जमा कर पाता !——कैसी अद्भुत जाति है ! तीस वर्षके बीचमें एक जाति संगठित हो गई !

[कासिमका प्रवेश]

दुर्गा०—क्यों कासिम, कुँअर कहाँ हैं ?

कासिम—अभीतक मेरे साथ खेल रहा था। अभी सो गया है। धायके पास छोड़ आया हूँ। अब मैं नहाने-खाने जाऊँ न ?

दुर्गा०—(हँसकर) हाँ, तुम तो नहाकर खानेके बारेमें हिन्दुओंसे भी कट्टर हो। जाओ, नहाओ-खाओ जाकर—देर हुई है।

कासिम—और आप न नहाएँ खाएँगे ?

दुर्गा०—नहीं, आज मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

कासिम—यही तो आपमें ऐब है। नहीं तो आप आदमी बुरे नहीं हैं।—यही तो ऐब है !

दुर्गा०—हाँ, यह मुझमें दोष है !

कासिम—मेरी बीबीमें भी यह ऐब था ! आज खाँसी है, कल बुखार है; परसों दर्द है। मगर मुझमें यह बात नहीं है। बुखार आ गया तो आ गया, नहीं तो अच्छा खासा रहता हूँ। खाता-पीता हूँ—और मजेमें काम करता हूँ।

दुर्गा०—तुम्हारी स्त्रीकी मौत कैसे हुई कासिम !

कासिम—अरे, कौन जाने ! एक दिन सबेरे उठकर देखा, मरी पड़ी है। हकीमने कहा, कलेजेकी बीमारी थी।

दुर्गा०—और तुम्हारा लड़का ?

कासिम—मेरे लड़केकी बात न कहिए हुजूर। बहुत ही खूबसूरत और मोटा-ताजा था। उसे देखकर भूख-प्यास हर जाती थी। उसका चलना फिरना अँधेरेमें 'दिये'के समान, बोलचाल बाँसुरीकी तानके समान और हँसी नदीकी लहरोंके समान जान पड़ती थी। ठीक अपने राजकुमारके ऐसा था। हाँ, रंग उसका इतना गोरा न था।

एक दिन मैं कामसे लौटकर घर आया तो देखा, बच्चा पड़ा हुआ है। बदन भरमें जैसे किसीने स्याही फेर दी थी। पूछा क्या हुआ। कुछ जवाब नहीं मिला। चाचीको बुलाया, वह देखकर रोने लगी; हकीमको बुलाया, वह सिर हिलाकर चला गया।

दुर्गा०--क्या हुआ था ?

कासिम-- अरे यही तो माळूम नही हुआ। उसके बाद ही मुल्कमें एक तरहकी बीमारी फैल गई, उसे लोग काला बुखार कहते थे। धड़ाधड़ लोग मरने लगे। बदनसीबीसे मैं नहीं मरा। (कासिमका आँसू पोंछना।)

दुर्गा० --संसारका यही नियम है कासिम,--तुम क्या करो। जाओ--नहाओ-खाओ।

कासिम--जाता हूँ।

दुर्गा०--इस मुसल्मानके साथ बातचीत करनेसे मन पवित्र होता है, सीधी सहज राहमें चलना आसान हो जाता है, ईश्वरकी भक्ति बढ़ती है।

तीसरा दृश्य।



स्थान--जयसिंहकी स्त्री कमलादेवीके सोनेके कमरेका बरामदा।

समय--रात।

[कमला दीवारसे लगी हुई बैठी है। उसके मुँहपर चाँदनीका प्रकाश पड़ रहा है पास थोड़ी दूरपर हथेलीपर गाल रक्खे, आधे लेटे हुए जयसिंह एकटक कमलाकी ओर निहार रहे है।]

जयसिंह--कैसी सुंदर रात है कमला !

कमला—बहुत सुंदर है, बहुत सुंदर है, बहुत सुंदर है—लो तिर्बाचक कह दिया! अब माना!

जयसिंह—प्रिये!

कमला—प्रियतम! प्राणनाथ!

जयसिंह—ना मुझे कुछ नहीं करना है। तुम इसी तरह बैठी रहो, मैं आँखोंसे तुम्हारे सौंदर्यकी मदिरा पिया करूँ।

कमला—देखो, कहीं एक ही घूँटमें सब न पी जाना; मेरे लिए भी कुछ रहने देना।

जयसिंह—कमला, सौन्दर्य अवश्य मदिरा है! नहीं तो देखते ही देखते यह नशा कहाँसे चढ़ आता है? सब अंग शिथिल क्यों हो जाते हैं? आँखें क्यों बन्द हो आती हैं?

कमला—तुम्हारी हालत शायद ऐसी हो जाती है!—मेरे तो ठीक इससे उल्टा होता है। तुमको देखते ही मेरा नशा मानो उतर जाता है।

जयसिंह—तो तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।

कमला—(कटाक्ष करके) नहीं प्यार करती—अच्छा, अच्छी बात है—नहीं प्यार करती।

जयसिंह—शायद प्यार करतीं हो। किन्तु मैं जिस तरह शरीरके रोएँ रोएँसे, हृदयके सारे रक्तसे, जीके सारे जोशसे, इह लोक—परलोक सब कुछ समझकर, तुमको प्यार करता हूँ, उसी तरह प्यार करती हो?

कमला—हाँ प्यार करती हूँ, लेकिन इस तरहकी कविता मुझे नहीं करना आती।

जयसिंह—नहीं कमला, इतनी सहृदयता—इतना हृदय तुम्हारे नहीं है!

कमला—न होगा । मगर तुम्हारी नाकमें रस्सी डालकर तुमको नचाती तो हूँ !

जयसिंह—हाँ घुमाती हो । जबसे तुमको ब्याह कर लाया हूँ प्रिये, तबसे मैं दुनियाको नये ही ढँगसे देख रहा हूँ ।

कमला—क्यों !—देख रहे हो कि नहीं ?

जयसिंह—देख रहा हूँ । जैसे एक अविराम झनकार, जैसे एक अनन्त विश्राम, जैसे एक असीम मोहमें पड़ा हूँ; जैसे न सोता हूँ और न जागता ही हूँ ।

कमला—जैसे अफीम खानेसे होता है ? क्यों ? मैंने अपनी दादीके मुँहसे सुना है ।

जयसिंह—मैं उस अपनी अवस्थाको कहकर समझा नहीं सकता । —जैसे एक आकांक्षा है, पर काहेकी आकांक्षा है सो कुछ समझमें नहीं आता । हँसी ओठोंमें खिल उठती है, मगर देख नहीं पड़ती । जैसे गीतकी तान ऊपर चढ़कर लीन हो जाती है । जैसे एक प्रकारका बाधाहीन सुखका स्वप्न, अथाह सौन्दर्य, अनन्त तृप्ति हो ।

कमला—क्यों, पहली रानीमें भी यह बात थी ?—लो, नाम लेते ही वे पहली रानी आ गईं !

[सरस्वतीका प्रवेश ।]

सरस्वती—आप यहाँ हैं स्वामी ? मैं आपको बड़ी देरसे खोजती फिर रही हूँ

जयसिंह—क्यों सरस्वती ?

कमला—तो अब तुम पहली रानीसे बातचीत करो—मैं जाती हूँ ।

(प्रस्थान ।)

जयसिंह—नहीं, जाओ नहीं, सुनो !

(उठकर खड़े हो जाना ।)

सरस्वती०—मैं तुम्हारे सुखमें विघ्न डालने नहीं आई स्वामी!—कुछ विशेष प्रयोजन है।

जयसिंह—क्या प्रयोजन है?

सरस्वती—स्वामीका स्त्रीसे क्या यही उचित प्रश्न है प्राणनाथ? खैर, उस बातको जाने दो। मैं इस समय तुमसे जबर्दस्ती प्यार उगाहने नहीं आई हूँ—यद्यपि उसपर कमलाकी तरह मेरा भी दावा है। जाने दो—जो गया वह गया।

जयसिंह—क्या प्रयोजन है?

सरस्वती—बड़ी जल्दी है! अच्छा सुनो। मुगलोंने मेवाड़पर चढ़ाई की है, सुना है?

जयसिंह—नहीं।

सरस्वती—तो तुम्हारे पिताने तुमको यह खबर देनेकी जरूरत नहीं समझी।

जयसिंह—तो उन्होंने समझदारीका काम किया।

सरस्वती—उन्होंने इस युद्धमें शामिल होनेके लिए बड़े राजकुमारको जोधपुरसे बुला भेजा है।

जयसिंह—अच्छा। फिर?

सरस्वती—यह सुनकर तुमको लज्जा नहीं आई? तुम क्षत्रिय हो, राजपूत हो, मेवाड़के होनेवाले राणा हो! राणाने तुमको मेवाड़पर चढ़ाई होनेकी खबर भी नहीं दी, और बड़े लड़केको इतनी दूर जोधपुरसे बुला भेजा। इससे क्या प्रकट होता है स्वामी?

जयसिंह—क्या प्रकट होता है?

सरस्वती—इससे यह प्रकट होता है कि राणा तुमको कायर और नालायक समझते हैं। जोधपुरसे दुर्गादास, रूपनगरसे विक्रम सोलंकी,

राठौर-वीर गोपीनाथ—सब मेवाड़की सहायता करनेके लिये आये हैं। वे सब इस समय राणाके सलाह-घरमें हैं। और तुम मेवाड़के होने-वाले राणा होकर भी रंग-महलमें बैठे प्रेमका स्वप्न देख रहे हो। सुनकर लाज नहीं लगती ? खूनमें जोश नहीं आता ? अपनेको धिक्कार देनेकी इच्छा नहीं होती ? क्या ! चुप रह गये !

जयसिंह—सब समझता हूँ। किन्तु सरस्वती,—किसीने जैसे मेरे जोशको मिटा दिया है—मेरे खूनको ठंडा कर दिया है। मुझे स्त्रीसे भी अधम बना दिया है।

सरस्वती—अगर इतनी समझ बाकी है तो अब भी आशा है स्वामी ! कमलाको चाहो, यह अनुचित नहीं है।—लेकिन जब विजातीय शत्रुओंकी सेनाने आकर देशको घेर लिया है, शत्रु द्वार-पर है, कठोर कर्त्तव्य सामने है, तब स्त्रीके अधरामृतको पीनेमें ही समय बिताना क्षत्रियका काम नहीं।

जयसिंह—सच है सरस्वती ! तुम सदासे उचित, सत्य, संगत बात कहती आ रही हो—पर उसे मैं सुनना नहीं चाहता। कर्त्त-व्यके मार्गको पहचानता हूँ, मगर उस राहमें चल नहीं सकता।

सरस्वती—अगर कर्त्तव्यकी राहको पहचानते हो, तो उठो, एक बार प्राणपणसे चेष्टा करके इस विलासको फटे-पुराने कपड़ेकी तरह, हृदयसे दूर कर दो स्वामी ! कर्तव्य-पथपर चलना सहज जान पड़ेगा। मेरे कहनेसे एक बार कर्त्तव्यकी ओर बढ़ो, वह आप हाथ बढ़ाकर तुमको अपनी ओर खींच लेगा—वह तुमको अपने घेरेमें रखकर तुम्हारी रक्षा करेगा। कर्त्तव्यको तुम जितना कठिन समझते हो, उतना कठिन वह नहीं है। एक बार हिम्मत करके उद्योगके सहारे अपने पैरों उठकर खड़े हो जाओ स्वामी !

जयसिंह—तुम ठीक कहती हो सरस्वती, अच्छी बात है। एक बार चेष्टा करके देखूँ।—क्या करनेको कहती हो सरस्वती?

सरस्वती—यही मेरे स्वामीके योग्य बात है।—तो सुनो प्राण-नाथ, आओ—वीरोंका वेष धारण करो। उसके बाद अपने पिताके पास जाओ। वहाँ जाकर अपने पितासे कहो—"इस युद्धमें मुझे किसीने बुलाया नहीं; मैं आपसे आया हूँ।" तुम्हारे पिता गर्व और स्नेहके साथ वीरपुत्र समझकर तुमको गलेसे लगा लेंगे; सारा मेवाड़ अभिमानके साथ कहेगा—यही तो हमारे होनहार राणा हैं। सारा राजपूताना सिर ऊँचा करके उस दृश्यको देखेगा।—स्वामी, धिक्कारके साथ बहुत दिन जीनेकी अपेक्षा पूज्य और प्रशंसनीय होकर एक दिनका जीना भी सुखदायक है।

जयसिंह—सरस्वती, मैं इसी घड़ी जाता हूँ।

सरस्वती—हाँ, इसी घड़ी चलो। मैं अपने हाथसे तुमको फौजी पोशाक पहना दूँ, चलो। (जयसिंहका प्रस्थान।)

सरस्वती—जाओ स्वामी, इस युद्धमें मेरा सच्चा स्नेह अभेद्य कवचकी तरह तुम्हारी रक्षा करेगा। शत्रुकी तलवार तुम्हें छू भी न सकेगी। (पीछे पीछे सरस्वतीका भी प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।



स्थान—उदयपुर। राणा राजसिंहका सलाह-घर।
समय—आधी रात।

[राणा राजसिंह, महारानी महामाया, दुर्गादास और अन्यान्य सामन्त बैठे हैं।]

विक्रम सोलंकी—हम लोग सन्मुख-युद्ध करके मुगल-सेनापर धावा करेंगे।

राजसिंह—यह तो ठीक नहीं जान पड़ता। खुले मैदानमें, असंख्य मुगल-सेनाके सामने खड़ा होना युक्तिसंगत नहीं है ।

गोपीनाथ—मैं कहता हूँ—थोड़ी सेनाकी अनेक टुकड़ियाँ बनाई जायँ । वे मुगलोंकी सेनाको परेशान करके आगे बढ़ने न दें ।

राजसिंह—तुम्हारी क्या सलाह है गरीबदास ? तुम इस पहाड़ी जगहकी हरएक राह, उपत्यका और जंगलको जानते हो।—तुम्हारी क्या राय है ?

गरीबदास—मैं कहता हूँ, मुगलोंको इस पहाड़ी राहमें आने दो। हम लोग उन्हें रोकनेकी कुछ भी चेष्टा न करें । केवल कौशलसे उनको सबसे तंग पहाड़ी दर्रेमें ले आवें । वहाँ मोर्चेबन्दी करना उनके लिए कठिन होगा । पहाड़ी तंग राहमें शत्रुसेनाकी शृंखला टूट जानेपर हम लोग उनपर आक्रमण करेंगे ।

दुर्गादास—यह बहुत ही अच्छा उपाय है राणासाहब ! मुगलोंके साथ केवल आज ही नहीं—बहुत वर्षों तक अभी युद्ध करना होगा; —जहाँ तक हो, हमें इसपर दृष्टि रखनी होगी कि हमारी शक्तिका अपव्यय न हो ।

गोपीनाथ—इस सलाहको मैं भी पसन्द करता हूँ ।

विक्रम—बहुत ठीक है । वहाँपर शत्रु दल बाँधनेका सुयोग न पा सकेंगे ।

राजसिंह—सबकी क्या यही सलाह है ? तुम क्या कहती हो महामाया ?

रानी—जो सबकी सलाह है वही मेरी सलाह है । लेकिन बाद-शाह खुद इस युद्धमें नहीं आये ?

राजसिंह—नहीं, वह और आजिम 'दोवारी' में हैं। बादशाहके पुत्र अकबर उदयपुर आये हैं;—यही ठीक खबर है न दुर्गादास ?

दुर्गादास—हाँ महाराणा! शत्रुकी सेना तीन भागोंमें बँटी हुई है। एक अकबरकी मातहतीमें उदयपुरकी राहमें, एक दिलेरखाँकी मातहतीमें 'दासुरी' की राहमें, और एक बादशाहकी मातहतीमें 'दोवारी' में।

रानी—मैं कहती हूँ, हम लोग सेनासहित बादशाहपर धावा कर दें।

राज०—नहीं। ऐसा करनेसे अकबरकी सेना पीछे रह जायगी। यह ठीक नहीं। क्यों दुर्गादास ?

दुर्गा०—हाँ, यह ठीक न होगा।

राज०—तो फिर गरीबदासकी सलाह सबको पसंद है ?

सब—हाँ, सबको पसन्द है।

राज०—अच्छी बात है। अब इस सम्मिलित सेनाका सेनापति किसे बनाना चाहिए ?

गरीब०—क्यों, दुर्गादासको।

राज०—यही सबकी सलाह है ?

सब—(रानी और दुर्गादासके सिवा) जी हाँ।

राज०—तो दुर्गादास, मैं तुमको इस सम्मिलित राजपूत-सेनाका सेनापति बनाता हूँ।

दुर्गा०—मैं आपके दिये हुए इस सम्मानको सादर ग्रहण करता हूँ। वह देखिए, कुमार भीमसिंह भी आ गये।

[भीमसिंह प्रवेश करके राणाको प्रणाम और सबसे यथोचित शिष्टाचार करते है।]

राज०—आओ बेटा—तुमको शायद 'आओ' कहनेका भी मुझे अधिकार नहीं है।

भीम०—क्यों पिताजी ?

राज०—मैंने तुमको निकाल देनेकी नालायकी की है।

भीम०—नहीं पिताजी, मैं अपनी इच्छासे निकल गया हूँ।

राज०—मुझसे तुम नाराज नहीं हो भीमसिंह ?

भीम०—आपसे नाराज ? आपकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए मैं प्राण तक दे सकता हूँ। भगवान् श्रीरामचंद्र पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए वनवासी हुए थे। मैं एक तुच्छ मनुष्य हूँ। किन्तु फिर भी मैं वही क्षत्रिय होनेका गर्व रखता हूँ।

रानी—कुँअर, तुमको आज तुम्हारे पिताने बुलाया है जन्म-भूमिकी रक्षा करनेके लिए।

भीम०—यह मेरे लिए गौरवकी बात है महारानी !

विक्रम०—तुम अपनी जन्मभूमिको भूले नहीं भीमसिंह ?

भीम०—जन्मभूमिको भूलूँगा ?—विक्रमसिंहजी, ये जो कई वर्ष मुझे विदेशमें बीते हैं, इनमें खाते-पीते सोते-जागते सदा यह धूम-धूसर पहाड़ोंसे परिपूर्ण मेवाड़-भूमि मेरी आँखोंके आगे नाचती रही है। आज उसी जन्मभूमिमें आते समय राहमें उन चिरपरिचित जंगली राहों, उपत्यकाओं और पर्वतमालाओंको देखकर मेरी आँखोंमें आँसू डबडबा आये; आवेशके मारे गला भर आया।

रानी—(स्वगत) ठीक राणा राजसिंहका प्रतिबिम्ब है।

[हथियारबन्द जयसिंहका प्रवेश ।]

राज०—कौन ? जयसिंह ?

जय०—हाँ पिताजी, मैं हूँ। पिताजीने मुझे इस युद्धमें सम्मिलित होनेके लिए नहीं बुलाया।—मैं आप आया हूँ।

राज०—(घड़ीभर बहुत ही विस्मयसे जयसिंहकी ओर देखकर) सच जयसिंह ! निश्चय करके यह बात कह रहे हो ?

जय०—हाँ पिताजी, आज मेवाड़पर संकट है। मैं मेवाड़का होनहार राणा हूँ। इस समय मेरा निश्चिन्त होकर घरमें बैठ रहना नहीं सोहता।

भीम०—चिरजीवी होओ भाई ! यही तो तुम्हारे योग्य बात है।

राज०—भीमसिंहको प्रणाम करो जयसिंह !

[जयसिंह भीमसिंहको प्रणाम करते है और भीमसिंह उनको गलेसे लगाते है।]

राज०—दुर्गादास, अपने इन दोनों पुत्रोंको तुम्हें सौंपता हूँ। ये तुम्हारी मातहतीमें युद्ध करेंगे।

दुर्गा०—यह मेरे लिए बड़े ही सम्मानकी बात है राणासाहब !

राज०—अच्छा तो अब आज सभा विसर्जन करो। तुम सब लोग जाओ।—जाओ बहिन, महलमें जाओ।

(राजसिंह और राजकुमारोंके सिवा सबका प्रस्थान।)

राज०—(कोमल स्वरसे) भीम !

भीम—पिताजी !

(राजसिंह चुप रह गये।)

भीम०—समझा पिताजी, मैं उस प्रतिज्ञाको भूला नहीं हूँ। मैं इसी घड़ी मेवाड़से बाहर जाता हूँ। अच्छा चलता हूँ पिताजी ! चलता हूँ भाई ! (भीमसिंह राणाको प्रणाम और जयसिंहको आशीर्वाद करके शीघ्रताके साथ चल देते हैं।)

राजसिंह—(घड़ीभर चुप रहकर) जयसिंह !—हो सके तो इस भाईके माफिक बनो।—जाओ बेटा, सोओ।

(जयसिंहका प्रस्थान।)

राजसिंह—(आप-ही-आप) भीम ! भीम ! मुझे तुम प्यार नहीं करते । जन्मभूमिकी बात कहते कहते तुम्हारा गला भर आया और मुझे केवल एक सूखा प्रणाम !—अपने दोषसे ऐसे वीर पुत्रको मैंने खो दिया । (प्रस्थान ।)

पाँचवाँ दृश्य ।



स्थान—चित्तौरके पासका जंगल; मुगलोंकी छावनी ।

समय—तीसरा पहरा ।

[सम्राट् औरंगजेब उत्तेजित भावसे खड़े है । सामने दिलेरखाँ और शाहजादा आजिम खड़े हैं । पास ही श्यामसिंह खड़े है ।]

औरंग०—दिलेरखाँ, क्या तुम भी इस लड़ाईमें हार आये ?

दिलेर०—हाँ जनाब, सिर्फ हार ही नहीं आया, अपना सब कुछ गवाँ आया ।

औरंग०—और शाहजादा अकबर ?

दिलेर०—उनके बारेमें जो सुना है वह भी बहुत अच्छी खबर नहीं है । वे अरावली पहाड़के दर्रेमें राणा राजसिंहके लड़के जयसिंहके हाथ पड़कर कैद हो गये हैं ।

औरंग—कैद ?—अकबर—हिन्दोस्तानका होनेवाला बादशाह राजपूतके हाथ कैद ?—अबकी मुगलोंकी पूरी बेइज्जती हो गई !

आजिम—(स्वगत) क्या ? हिन्दोस्तानका होनेवाला बादशाह अकबर ?

दिलेर०—अब जहाँपनाह अपनी खबर बतावें, क्या है ? जहाँपनाहने ' देवारी ' छोड़कर चित्तौरके किलेमें पनाह ली है ?

औरंग०—दिलेरखाँ, मुझे राठौर दुर्गादासने पूरी तरहसे शिकस्त दी। इस लड़ाईमें मेरा सब सामान, रसद, ऊँट, हाथी, घोड़े और प्यारी बेगम भी छिन गई।

दिलेर०—तब तो यह कहिए कि बोझ हलका हो गया जनाब! अब दिल्लीको लौटना उतना मुशकिल न होगा!

औरंग०—दिल्ली लौट जाऊँगा यह बेइज्जती लेकर? (श्यामसिंहसे) क्यों राजासाहब?

श्याम०—यह कभी नहीं हो सकता।

दिलेर०—जैसे आप बेइज्जती लिए जा रहे हैं वैसे ही बहुतसी चीजें छोड़ भी तो जाते हैं। ऊँट—हाथी—रसद—बेगम। अब तो लौट चलना बहुत ही सहल है।

औरं०—इस रंजके वक्त तुम्हारी हँसी अच्छी नहीं लगती दिलेरखाँ!

श्याम०—हाँ सेनापति, हँसीका भी समय होता है।

दिलेर०—बादशाह सलामत, हँसी मुझे रंजके वक्त ही अच्छी लगती है। रंजके वक्त मेरे मुँहसे हँसीकी बात निकलती भी है।

औरंग०—मुगलोंकी ऐसी बेइज्जती कभी नहीं हुई—जैसी—

दिलेर०—जसी आज आपके हाथसे हुई। यह मानता हूँ जहाँ-पनाह!

औरंग०—मेरे हाथसे या तुम्हारे हाथसे? यह मुगल-बादशाहतकी बदनसीबी है कि आज मुगल-फौजके सिपहसालार दिलेरखाँ हैं। आज अगर जसवन्तसिंह जिन्दा होता—

श्याम०—अगर राजा जसवन्तसिंह जीते होते जहाँपनाह!

दिलेर०—अगर बादशाह सलामत चाहते, तो वे आज जीते रह सकते थे।

औरंग०—क्या तुम समझते हो कि—

दिलेर०—समझता कुछ नहीं हूँ जहाँपनाह !—सब जानता हूँ। जानता हूँ कि हुजूरने अफगानिस्तानमें उनको कत्ल करवा डाला है इस खूनके जुल्म और बेदर्दीका वैसा असर पहले कभी मेरे दिलपर नहीं पड़ा था जैसा कि उस दिन मुगलोंकी फौजके सामने खुदापर भरोसा करके बेधड़क खड़ी हुई रानीको जान देनेके लिए तैयार देखकर पड़ा । उसी दिन मैंने समझा था जनाब, कि यह जसवन्त-सिंहका खून मुगल-बादशाहतको मिटा देगा । अगर जहाँपनाह चाहते तो यह दिलेर बहादुर दुर्गादास दुश्मन न होकर दोस्त होता, और ये राजपूत—राजा श्यामसिंहके ऐसे अपनी कौमकी और अपनी इज्जत न करनेवाले, अपने मुल्कके दुश्मन, कायर राजपूत नहीं—दुर्गादासके ऐसे सच्चे, सीधे, ऊँचे खयालके बहादुर राजपूत—मुगल-बादशाहतके लिए आँधी न होकर उसको थामनेवाले खंभे होते ।

औरंग०—कैसे दिलेरखाँ ?

दिलेर०—कैसे ? हिन्दोस्तानकी तवारीखके सफे उलटिए । उससे आपको मालूम होगा कि कैसे। मानसिंह, भगवानदास, टोडरमल, बीरबल वगैरह न होते, तो मुगलोंकी बादशाहत यहाँ कायम नहीं हो सकती थी और औरंगजेब भी दिल्लीके तख्तपर बैठ नहीं सकते थे । जिस जड़को बादशाह अकबर जमा गये हैं उसे आप अंजाममें अपनेको ही [illegible] न पहुँचानेवाली अपनी चालसे उखाड़ डाल रहे हैं ।

औरंग०—मैं ?

दिलेर०—हाँ आप । जिजिया न बाँधा जाता तो न इधर राजपूत एक होते, और न उधर मराठे बिगड़ खड़े होते । राणा राजसिंहने

आपकी भलाईके ही लिए यह बात लिखी थी । आप उनकी बात न सुनकर जानबूझकर, अपने हाथों अपनी बुराईको अपने पास बुला रहे हैं । शाहंशाह, यह याद रखिए कि डरा-धमकाकर इस दिलेर और बहादुर बड़ी कौमपर कोई हुकूमत नहीं कर सकता । वे अपनी खुशी-से अगर किसीके ताबे रहें तो रह सकते हैं । और अगर यह सारी कौम बिगड़ खड़ी हो, तो सिर्फ उसकी गर्म साँसोंसे मुगल-बादशाहत उड़ जा सकती है !

औरंग०——मैं इस बारेमें सोचूँगा दिलेरखाँ, मेरे सिरमें दर्द हो रहा है । इस वक्त मैं कुछ सोच नहीं सकता । (प्रस्थान ।)

दिलेर०——खुदा तुमको समझ दे औरंगजेब !

आजिम——(अपने मनमें) अकबर हिन्दोस्तानका बादशाह?——यह न होगा,——यह हो नहीं सकता ।

दिलेर०——(अपने मनमें) शाहजादे आजिमके चेहरेसे तो अच्छा रंग नहीं देख पड़ता ! (प्रकट) क्या सोच रहे हो शाहजादा साहब ?

आजिम——वह बात तुमसे कहनेकी नहीं है दिलेरखाँ !

(प्रस्थान ।)

दिलेर०——हूँ !——जरूर कोई खास बात है ! यह सिर्फ 'दोवारी' की हार नहीं है——शाहजादेके रंग अच्छे नहीं देख पड़ते !

श्यामसिंह——तुम हार आये दिलेरखाँ ?

दिलेर०——(सहसा श्यामसिंहकी ओर फिरकर) हाँ राजासाहब, मैं हार आया । क्यों, आपको बड़ा अफसोस हुआ ! राजपूतोंका जीतना आपको अच्छा नहीं लगा !

श्याम०——नहीं, नहीं मैं कहता था कि——

दिलेर०—रहने दीजिए ।--या खुदा ! तुम अजीब आदमी हो ! जिस कौममें दुर्गादास ऐसे आदमी पैदा होते हैं, उसी कौममें श्यामसिंहके ऐसे भी आदमी पैदा होते हैं !—अच्छा, जनाब सिंहजी आपका नाम श्यामसिंह न होकर शम्भुजोहा होता तो ठीक होता, क्यों न ?

(नेपथ्यमें कोलाहल सुन पड़ता है ।)

श्याम०—यह कैसा शब्द है ? जयके उल्लासकी ध्वनि है !—दुर्गादासने यहाँ आकर हम लोगोंपर चढ़ाई तो नहीं कर दी ?

दिलेर०—भागो राजासाहब, इस पुश्तैनी जानको बचाओ ।

श्याम०—नहीं ये लोग ' अल्ला--अल्ला ' कहकर चिल्ला रहे हैं–यह हमारी फौज है ।

दिलेर०—बेशक आपहीकी फौज है । अगर हमारी फौज होती तो ' हर हर बम ' कहकर चिल्लाती ।—क्यों न राजासाहब ? अच्छा आपको यह खुशामदका इल्म किसने सिखाया था ?

श्याम०—क्यों ?

दिलेर०—वह जरूर कोई बड़ा उस्ताद आदमी रहा होगा। कैसा अच्छा फायदेका इल्म सिखाया था ?—वाह !

[शाहजादा अकबरका प्रवेश ।]

श्याम०—यह लो, शाहजादेसाहब तो आ गये !

दिलेर०—(देखकर) हाँ, शाहजादे साहब ही तो हैं । बन्दगी शाहजादा—मैंने तो सुना था, आपको दुश्मनोंने कैद कर लिया—क्या वह खबर झूठ थी ?

श्याम०—मैं जानता हूँ, झूठ थी ।

दिलेर०—हाँ, जरूर झूठ थी । महाराज जब झूठ बताते हैं तब जरूर ही झूठ थी ।—क्यों राजासाहब, है कि नहीं?

श्याम०—शाहजादा जरूर दुश्मनोंको शिकस्त दे आये हैं ।

दिलेर०—हाँ, मैं भी तो यही सोच रहा था ।—शाहजादेसाहब, क्या आप राणाको कैद कर लाये हैं?

अकबर—नहीं दिलेरखाँ, मैं ही राणाके यहाँ कैद हो गया था ।

श्याम०—कौशलसे छूट आये हैं?

अकबर—नहीं राजासाहब,—राणाने मेहरबानी करके छोड़ दिया है ।—दिलेरखाँ, राजपूतोंकी कौम लड़ना जानती है ।

दिलेर०—सच शाहजादा साहब?

अकबर—सिर्फ लड़ना ही नहीं जानती, माफ करना भी जानती है ।

दिलेर०—यह बिल्कुल नई बात आपने ढूँढ़ निकाली!

श्याम०—इस वक्त आप कैसे छूटे?

अकबर—दिलेरखाँ—सुनो—

दिलेर०—राजासाहबसे कहिए—सुननेके लिए वे मुझसे जियादह मुस्तैद हैं ।

अकबर—सुनिए राजासाहब, मैं जिस वक्त अरावली पहाड़के दर्रेमें, पिंजड़ेमें चिड़ियाकी तरह, फँसा हुआ था, मैं और मेरी फौज खानेके लिए कुछ न होनेसे मुर्दा हो रही थी, उस वक्त राणाने अपने लड़के जयसिंहको भेजा—मुझे मारनेके लिए नहीं, कैद करनेके लिए नहीं,—मुझे खाने-पीनेका सामान देनेके लिए—वहाँसे छुटकारा देनेके लिए ।—और क्या चाहते हो?

दिलेर०—राणा और भी एक काम कर सकते थे । अपनी एक लड़की भी शाहजादा साहबके हमराह कर दे सकते थे ।—जाइए,

अब भीतर जाइए । जैसेके तैसे घर लौट आये, यह भी गनीमत है ।---चलिए राजासाहब, क्या आज यहाँ आपकी दावत है ?

[शाहजादा एक ओर, दिलेरखाँ और श्यामसिंह एक ओर जाते हैं ।]

छठा दृश्य ।



स्थान---राजपूतोंकी छावनी ।

समय---तीसरा पहर ।

[राणा राजसिंह और महामाया, दोनों बैठे हैं । सामने मुगलोंके झंडे लिए दुर्गादास और अन्यान्य सामन्त-गण खड़े हैं ।]

राज०---धन्य हो दुर्गादास, तुमने मुगलोंको मेवाड़से निकाल बाहर कर दिया ।

रानी---धन्य हो दुर्गादास, तुम बेगमको कैद कर लाये ।--आज मैं बदला चुकाऊँगी ।

राज०---क्या ? दुर्गादास, तुम बादशाहकी बेगमको कैद कर लाये हो ? कौन बेगम ?

दुर्गा०---काश्मीरी बेगम -गुलनार ।

राज०---उन्हें कैद कर लाये ? उसी घड़ी छोड़ नहीं दिया ?

दुर्गा०---राणासाहब, मैं केवल सेनापति था । युद्धमें शत्रुके आदमियोंको कैद करने-भरका मुझे अधिकार था । कैदियोंको छोड़नेका अधिकार राजाको होता है ।

राज०---जाओ दुर्गादास, बेगमसाहबाको इसी दम छुटकारा देकर इज्जतके साथ बादशाहके पास भेज दो ।

रानी---क्यों राणा ।

राज०—औरतके साथ हम लोगोंको कुछ झगड़ा नहीं है।

रानी—औरतके साथ झगड़ा नहीं है? तो फिर मैंने क्यों आकर आपका आश्रय लिया है महाराणा? मुझे ही पकड़नेके लिए क्या यह भारी चढ़ाई नहीं हुई है? मै अगर इस युद्धमें पकड़ ली जाती, तो बेगम मेरे साथ क्या सलूक करती?

राज०—हम मुगलोंकी नीतिका अनुकरण करने नहीं बैठे हैं।

रानी—नहीं महाराणा, मैं इस बेगमको इस तरह न छोड़ूँगी। मैं बदला चुकाऊँगी।

राज०—बदला? किसका बदला महामाया?

रानी—किसका? यह पूछिए कि उसकी किस किस हरकतका बदला न लूँगी? इस काश्मीरी बेगमने ही मेरे पति और पुत्रकी हत्या की है, यह काश्मीरी बेगम ही मेरे यों जंगली जानवरकी तरह एक जगहसे दूसरी जगह भागते फिरनेका कारण है—इसका बदला लूँगी राणा, मैं उसे अपनी मुट्ठीमें पाकर न छोड़ूँगी। बदला लूँगी।

राज०—क्या बदला [illegible]

रानी—इस बारेमें मैंने अभी कुछ नहीं सोचा है राणा, इस बारेमें सोचूँगी। सोचकर ठीक करूँगी। उसे तिल तिल करके जलाना भी यथेष्ट न होगा। उसके शरीरमें सुइयाँ चुभाना भी यथेष्ट न होगा। सोचकर ठीक करूँगी। नई तरहकी यन्त्रणाके यन्त्रका आविष्कार करूँगी। स्त्रीके लायक सजा स्त्री ही सोच सकती है।

राज०—महामाया, हम-तुमको पापका दण्ड देनेका क्या अधिकार है? जिनका यह काम है वे ही—

रानी—(उठकर) वे ?—कहाँ हैं वे ? वे कहाँ हैं ? वे हाथ समेटे बैठे हैं। आकाशका वज्र सदा पापीके सिरपर ही नहीं गिरता महाराज, पुण्यात्माके सिरपर भी गिरता है। भूकम्पसे पापीका ही घरबार नहीं नष्ट होता, बेचारे निरीह लोगोंके झोपड़े भी मिट्टीमें मिल जाते हैं। प्रबल बाढ़ियोंमें क्षुद्र घास-फूस ही डूबते हैं, बड़े बड़े पेड़ वैसे ही सिर ऊँचा किये खड़े रहते हैं। ईश्वरका नियम धर्म—अधर्मका विचार नहीं करता—जहाँ जिसे दुर्बल, जीर्ण, पुराना पाता है उसीकी गर्दन पहले दबाता है।

राज०—(शान्त भावसे) महामाया, जोशमें आकर ईश्वरका विचार करनेके लिए तैयार न होओ—निश्चय करो, ईश्वरके नियमसे अन्तको अधर्मका अवश्य पतन होगा।

रानी—कब होगा ?—मैंने तो आजतक नहीं देखा राणा, मैंने तो आजतक यही देखा है कि सरलता सदासे चालाकीके पैरों पड़कर भीख माँगती आती है, चालाकीने एक बार उसकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। सत्य सदासे झूठकी गुलामी करता आता है—अपने मस्तकको ऊँचा नहीं कर सकता। मैं सदासे न्यायकी जगहपर अन्याय-की विजय-पताका फहराती हुई देख रही हूँ। मैं सदासे धर्मके टूटे मन्दिरमें अधर्मके विजयकी जयध्वनि सुनती आ रही हूँ। पुण्यके हरे भरे राज्यके ऊपरसे भयानक पापकी रक्तरंजित बाढ़िया लहराती देख पड़ रही है। घूस, अत्याचार, झूठ, विश्वासघात आदिसे पृथ्वी परिपूर्ण हो रही है।—तब भी तुम कहते हो, अन्तमें धर्मकी जय होगी !—कब होगी ? बतलाओ, कब होगी ?

राज०—शान्त होओ महामाया, अपनेको सँभालो—धैर्य धारण करो।

रानी---धैर्य ? राणा, अगर तुम स्त्री होते, और तुम्हारा पति परदेशमें विश्वास-घातकके हाथों विष देकर मारा जाता, अगर बेदर्दीके साथ तुम्हारे सरल, उदार पुत्रकी हत्या की जाती, अगर मेरी तरह नन्हेंसे निस्सहाय निरीह बच्चेको लेकर एक देशसे दूसरे देशमें आकर भिक्षुककी तरह द्वार द्वार मारे मारे फिरना पड़ता, तो तुम समझते ।--धैर्य ?--नहीं राणा,--मैं उस पापिनको यों न छोड़ूँगी ।

राज०---दुर्गादास, जीतेजी मैं अबलाके ऊपर अत्याचार होते न देख सकूँगा । जाओ, तुम सम्मानके साथ बेगमको बादशाहके पास पहुँचा दो ।

रानी---दुर्गादास, तुम राणाके नौकर नहीं हो । मैं तुम्हारी मालकिन हूँ ।

दुर्गा०---क्षमा कीजिए महारानी, इस युद्धमें हम सब राणासाहबके अनुचर हैं । बेगम आज मेवाड़के राणाके यहाँ कैद हैं; मारवाड़की रानीके यहाँ नहीं । महारानी, अपनेको न भूलिए । आपहीकी रक्षाके लिए राणाने यह युद्ध किया है । राणा आपके हितचिन्तक हैं । उनकी आज्ञा मानना आपका भी धर्म है ।

रानी---(कुछ देर चुप रहकर) तुम सच कहते हो दुर्गादास, (फिर राणाके सामने घुटने टेककर) राणा, क्षमा कीजिए । हृदयके शोकावेगसे अधीर होकर मैं पागलसी हो गई---क्षमा कीजिए । किन्तु यदि तुम इस तीव्र वेदना, इस दारुण ज्वाला, इस गहरी जीकी जलनको जान सकते ।---मैं पागल हो रही हूँ ! क्षमा कीजिए ।

राज०---मैं पहले ही क्षमा कर चुका हूँ महामाया, मैं चाहता हूँ कि जो क्षमा तुमने मुझसे माँगी है वही क्षमा तुम बेगमको दिखलाओ ! मैं विचारके लिए बेगमको तुम्हारे पास छोड़े जाता हूँ । उसे क्षमा

करो, अपना महत्त्व दिखलाओ । महामाया, स्नेह, दया, भक्ति, क्षमा आदि गुणोंसे ही स्त्रीजाति पूजनीय है । ये गुण ही अबलाकी शक्ति हैं । और अगर तुम दण्ड ही देना चाहती हो, तो सोचो तो, तुमने अपने ऊपर अत्याचार करनेवालेको अगर हँसते हँसते क्षमा कर दिया तो क्या वह उसके लिए कम दण्ड है ?

रानी—ठीक है ! बेगमको ले आओ दुर्गादास !

(दुर्गादासका प्रस्थान)

राज०—अच्छा, तो मैं अब तुम्हारी दयाके ऊपर बेगमको छोड़े जाता हूँ महामाया ! (राणाका प्रस्थान)

रानी—यह भी ठीक है ! इस न्यायासनपर बैठकर मैं उसका विचार करूँगी—इतना ही यथेष्ट है । भारतकी सम्राज्ञी, औरंगजेबकी बेगम, मेरे पति और पुत्रकी हत्या करनेवाली डाइन, आज मेरे सामने अपराधी कैदीकी दशामें खड़ी होगी; मैं सिंहासनपर बैठे बैठे उसके मुँहकी ओर देखकर उसे प्राणोंकी भिक्षा दूँगी । यही क्या बुरा है !—वह आ रही है । इस समय भी मुँहपर वही ऐंठन, नजरमें वही घमंड, चालमें वही अहंकार है ! जगदीश्वर, तुमने पापको इतना उज्ज्वल और विचित्र बनाकर तैयार किया है !

[बेगम गुलनारके साथ दुर्गादासका प्रवेश]

रानी—सलाम बेगम साहबा !

गुलनार—जसवन्तसिंहकी रानी ?

रानी—हाँ, क्या पहचान नहीं सकती हो ? जिसे पकड़नेके लिए इतनी तैयारीसे यह चढ़ाई हुई थी, मैं वही जसवन्तसिंहकी रानी हूँ । आपने मेरे पति और पुत्रको खा लिया । इससे भी आपका राक्षसी पेट नहीं भरा । अब मुझे और मेरे छोटे बच्चेको भी खाना चाहती हो ?—

क्या इसी बीचमें सब भूल गईं ? इतनी भूल करनेसे काम कैसे चल सकता है बेगम साहबा ?

गुलनार—(दुर्गादाससे) और तुम हो दुर्गादास ?

दुर्गादास—हाँ बेगम साहबा !

गुल०—मुझे यहाँ क्यों लाये हो ?

दुर्गा०—यहाँ आपका न्याय-विचार होगा।

गुल०—कहाँ ? किसके आगे ?

रानी०—मेरे यहाँ, मेरे आगे।—बात जरा रूखी बेढंगी जान पड़ती होगी, क्यों न ? क्या कीजिएगा !—चक्र घूम गया है बेगम, क्यों ? दुर्गादासकी ओर इतने गौरसे आप क्यों देख रही हैं ? सोचती होंगी, इस काफिरकी इतनी मजाल कि आपको कैद कर लावे ! यही सोचती हैं,—क्यों न ? अच्छा, अब आप कौन सजा पसंद करती हैं ?

गुल०—मैं तुम्हारे यहाँ कैद हूँ; जो जी चाहे, करो।

रानी—जो जी चाहे वही करूँ ? बेगम साहबा, मेरे मनकी सजा तो तुम्हारे लिए बहुत ही कठिन होगी। मेरी जो इच्छा है, वह दण्ड तुम्हारे लिए असह्य होगा। तुम उसे सह न सकोगी। वह बड़ी ही कड़ी सजा है। नरककी ज्वाला उसके आगे वसन्त-वायुके समान ठंडी है !—सैकड़ों बिच्छुओंके काटनेकी जलन भी उसके आगे झरनेके पानीके समान शीतल है ! मेरा जो जी चाहे ? मेरा क्या जी चाहता है, जानती हो बेगम ?—खैर जाने दो—तुम मुझे अगर पकड़ मँगवाती, तो क्या करती बेगम साहबा ?

गुलनार—क्या करती ? तुमको अपने पैरोंका धोवन पिलाती। उसके बाद मरवा डालती।

रानी—अभीतक तेज नहीं गया! विषका दाँत उखड़ गया, मगर फुफकार कम नहीं हुई। बेगम साहबा, खेद है, तुम्हारी आज्ञा पूरी नहीं हुई! आज तुम्हारे आगे इस तरह मुझे खड़ा होना चाहिए था, क्यों न? पर क्या किया जाय, तुमको ही मेरे आगे इस तरह खड़ा होना पड़ा।—देखो गुलनार, सुनो बादशाहकी बेगम, आज तुम मेरी मुट्ठीमें हो। चाहूँ तो मैं तुमको पैरका धोवन भी पिला सकती हूँ, तुम्हारी हत्या भी कर सकती हूँ। किन्तु मैं वह कुछ न करूँगी। मैं तुम्हें छोड़े देती हूँ। सेनापति, इनको बादशाहके पास पहुँचा आओ। (गुलनारसे)—खड़ी हुई हो?—विस्मय हुआ?—राजपूतोंका यही बदला है।　　　　　　　　(यवनिकापतन।)

तीसरा अंक।

पहला दृश्य।



स्थान—दिल्लीके महलकी बाहरी बैठकका बरामदा।

समय—प्रातःकाल।

[तहव्वरखाँ और शाहजादा अकबर खड़े खड़े बातें कर रहे हैं।]

तहव्वर०—हाँ, तो तुम लोगोंको राजपूतोंने ठीक उसी तरह फँसा लिया था जैसे मूसेदानमें मूसेको फँसा लेते हैं।

अकबर—ठीक उसी तरह। हम लोग दूर,—बहुत दूर,—तक सीधे चले गये, वहाँ देखा, आगे जानेकी राह नहीं है। घूम कर देखा, वह राह भी बन्द थी।

तहव्वर०—और पहाड़के ऊपरसे राजपूत लोग तमाशा देख रहे थे कि मूसेदानके भीतर फँसे हुए मूसेकी तरह तुम लोग एक बार इधर और एक बार उधर दौड़ रहे हो?

अकबर—वह पहाड़ी रास्ता इतना तंग था कि सौ आदमी भी पास पास नहीं खड़े हो सकते थे। ऐसा तंग था कि हमारी फौजका कौन आदमी कहाँ है, यह भी देखना मुश्किल था।—ऐसा तंग था!

तहव्वर०—तो लड़ाई नहीं हुई?

अकबर—लड़ाई किससे करते? पहाड़से? दुश्मनोंका पता ही नहीं चला।

तहव्वर०—यही मैं बराबर कहता चला आता हूँ कि राजपूत लोग लड़ना जानते ही नहीं।—एक कायदा मानकर नहीं चलते! किसीने कभी सुना है—रसद लूटकर, भूखों मारकर, लड़ाई जीतना?

[आजिमका प्रवेश।]

तहव्वर—बन्दगी शाहजादा साहब!

आजिम—(उधर ध्यान न देकर) अकबर, तुमने सुना?

अकबर—क्या आजिम?

आजिम—मेवाड़की लड़ाईमें तुम्हारी इस हारसे अब्बाजान बहुत नाखुश हैं।

अकबर—फिर मैं क्या करूँ?—और आजिम, इस लड़ाईमें सिर्फ मैंने ही शिकस्त नहीं खाई है। खुद दिलेरखाँ—

आजिम—दिलेरखाँके ऊपर भी बादशाह सलामत खुश नहीं हैं।

अकबर—और बादशाह सलामत खुद? और तुम? तुम लोग क्या इस लड़ाईमें जीत आये हो?

आजिम—हमने दुश्मनोंसे लड़कर शिकस्त खाई है।

अकबर—और मैंने?

आजिम—तुम ऐश-अशरतमें पड़े रहे, लड़े नहीं। कमसे कम बादशाह सलामतका यही खयाल है।

अकबर—होने दो, फिर मैं क्या करूँ?

तहव्वर०—शाहजादा किससे लड़ते?—

आजिम—चुप रहो!

अकबर—तो अब क्या करना होगा?—मैं डरपोक हूँ, ऐयाश हूँ, मुझे नाच और गाना पसन्द है।—तो होगा क्या?

आजिम—होगा और क्या ? अकबर, बादशाह सलामत तुमको नालायक समझकर फिर बंगाल भेजे देते थे। मैंने बहुत कुछ कह-सुन कर उनके इस इरादेको बदला है। देखो, मैं तुमसे दोस्तके तौरपर कहता हूँ,—अब्बाजान तुमपर बहुत खफा हैं; खबरदार, उनके पास आना-जाना तुम्हारे लिए अच्छा न होगा। (प्रस्थान)

तहव्वर०—शाहजादा साहब, ढंग तो अच्छे नहीं नजर आते। आपने लड़ाई न जीतकर बड़ी ही बेवकूफी की है।

अकबर—मैं क्या जान-बूझकर अपनी मर्जीसे हार आया हूँ ?

तहव्वर०—यह ठीक है, लेकिन गैरमर्जीसे भी हारना अच्छा नहीं हुआ। तख्त पानेकी अगर कुछ उम्मेद थी तो वह भी गई।

अकबर—तो फिर तख्त किसे मिलेगा ?

तहव्वर०—आजिमको। आपने देखा नहीं, कैसी कहरकी नजरसे मुझे घूरकर डाँट बताई। आजिमने जरूर बादशाहको सुझा-बुझाकर अपने माफिक कर लिया है।

अकबर—तो आजिमने ही कौन बड़ी बहादुरी दिखाई है ! वही क्या जीतकर आये हैं ! हारकर बेगम साहबा तकको गँवा आये हैं। राजपूत लोग भले मानस होते हैं, इसीसे उन्होंने बेगम साहबाको बादशाह सलामतके पास भेज दिया।

तहव्वर०—आजिम भी हार आये हैं; लेकिन वह हार तो खुद बादशाहकी है न। बादशाह आजिमसे उसके लिए कुछ कह नहीं सकते। आजिम बादशाहकी मातहतीमें उनके कहनेके माफिक कार्रवाई करते थे; और आप थे खुदमुख्तार सरदार।

अकबर—आजिमको बादशाह सलामत प्यार करते हैं। क्योंकि वह चापलूस है, कट्टर मुसलमान है—शराब नहीं छूता, गाना नहीं

सुनता, दस दफे नमाज पढ़ता है; मगर उसके ये सब ढोंग हैं ।—बादशाहको खुश रखनेका ढंग है ।

तहव्वर—आप भी वही क्यों नहीं करते ?

अकबर—तहव्वर खाँ,—मैं सल्तनत और तख्तको छोड़नेके लिए राजी हूँ, मगर शराब, औरत और गानेको छोड़नेके लिए तैयार नहीं। मैं आजिमकी तरह मक्कार, फरेबी, छोटी तबीयतका नहीं हूँ । तस्बीह हाथमें लिए रहकर फरेब करना मुझे पसंद नहीं है ।

तहव्वर—चुप रहिए, बादशाह सलामत आ रहे हैं ।

[अकबर चुपचाप दूसरी ओरसे चले जाते हैं और इधर औरंग-
जेब और दिलेरखाँ प्रवेश करते हैं ।]

औरंग०—क्या दुर्गादासने झालावाड़ जीत लिया ? और पुर-मण्डलमें सुबलदासने खाँ और रुहेलोंको शिकस्त दी ?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह, और भी यह खबर है कि दयालशाहने मुगलोंकी फौजको मालवेसे निकाल भगाया है । अब वह वहाँ काजियोंको पकड़-पकड़कर उनकी दाढ़ियाँ मुड़वाता है, कुरानको कुएँमें डलवाता है, मसजिदोंको ढहवा रहा है ।

औरंग०—क्या ! इस तरह दीनपर जुल्म !

दिलेर०—हिन्दू लोग इस बातको नहीं जानते थे । हुजूरने ही उनको यह राह दिखलाई है । क्या हुजूरने हिन्दुओंके वेदोंको आगमें नहीं जलाया ? ब्राह्मणोंको पकड़कर जबरदस्ती कल्मा नहीं पढ़ाया ? तीर्थोंको नापाक नहीं किया ? मन्दिरोंको नहीं गिरवाया ?—जनाब, सुनिए, हिन्दुओंसे मुखालफत छोड़िए, 'जिजिया' बन्द कर दीजिए। हिन्दू और मुसलमान एक हो जायँगे ।

औरंग०—कभी नहीं। जबतक मैं जिन्दा हूँ–तबतक मुसलमान मुसलमान हैं और काफिर काफिर हैं।—दिलेरखाँ, मैंने दक्खिनसे मोअज्जमको बुलाया है। अब सारी मुगलोंकी फौज लेकर मारवाड़पर चढ़ाई करूँगा। देखूँ क्या होता है।—तहव्वरखाँ, तुम सत्तर हजार फौज लेकर मारवाड़पर चढ़ाई करो। मैं और भी फौज अकबरकी मातहतीमें भेजता हूँ। खुद मैं भी फौज लेकर पीछेसे आता हूँ। देखो, अगर मारवाड़पर फतेह पा सकोगे, तो तुमको मैं इनाममें एक सूबा दूँगा और अगर हारे तो हथकड़ी-बेड़ी। (प्रस्थान।)

तहव्वर०—क्या कहते हो खाँ साहब ?

दिलेर०—एक दफा मैं देख चुका हूँ; एक दफा तुम भी देखो।

दूसरा दृश्य।

स्थान—दिल्लीके शाहीमहलके भीतरका बाग।

समय—सायकाल।

[बेगम गुलनार उसी बागमें टहल रही है।]

गुलनार०—कैसा लम्बा चौड़ा गठीला बदन था! कैसा ऊँचा और चौड़ा मत्था था! कैसी तेज नजर थी! कैसा रौबीला और शानदार चेहरा था! वाकई दुर्गादास एक खूबसूरत बहादुर जवान है। लेकिन कैसे ताज्जुबकी बात है!—उसने एक दफा भी चाहसे मेरी तरफ नहीं देखा! उसने इस लासानी हुस्नको हसरतकी निगाहसे नहीं देखा! इस जवानीकी बिजलीने उसे बेहोश नहीं बना दिया! या खुदा! तेरी इस दुनियामें ऐसे भी आदमी हैं!—

[गाते हुए रजियाका प्रवेश ।]

गीत ।

कैसे सखी बिताऊँ, उन बिन ये रात सारी ॥ कैसे० ॥
पल भर न देख पाऊँ, तो बोझ जिंदगी हो ।
उन बिन जिऊँगी कैसे, चिन्ता यही है भारी ॥ कैसे० ॥
रखती हृदयमें तो भी, जो दूर जान पड़ते ।
कैसे रहूँगी अब मैं, हो दूर उनसे न्यारी ॥ कैसे० ॥

रजिया— क्यों अम्मीजान !—शाम हो गई और तुम अभी तक इस सूनसान बागमें अकेली फिर रही हो ?

गुलनार—मुझे अकेलेमें ही अच्छा लगता है ।

रजिया—पहले तो यह बात न थी ।—अम्मीजान, आजकल तुम इतनी फिक्रमें क्यों डूबी रहती हो ?—पहले तो तुम्हारा यह हाल न था ।

गुलनार—तूने कभी किसीको पसंद किया है ?

रजिया—क्यों नहीं ! खानेमें खिचड़ी और गानेमें खेमटा मुझे बहुत पसन्द हैं । सबसे बढ़कर मुझे मेरी बिल्लीका बच्चा पसंद है—“ मेओं—मेओं—मेओं ।—” मगर बेचारा राग-रागिनीका हाल कुछ नहीं जानता !

गुलनार—दूर ! पगली लड़की ! मैं कहती हूँ, तूने कभी किसी आदमीको चाहा है ?

रजिया—आदमीको ?—चाहती क्यों नहीं हूँ—तुमको चाहती हूँ, अम्मीको चाहती हूँ,—और एक आदमीको खूब चाहती थी, वह मर गया ।

गुलनार—किसको ?

रजिया—उसी बुड्ढे बबर्ची करीमको । कैसा अच्छा खाना पकाता था अम्मीजान !—जैसे एकदम मलार राग (गाने लगती है)

"पियासे कहियो बरखा रितु आई"—लेकिन यह 'देस' है। मलारसे मिलता जुलता ही है।

गुलनार—रजिया, एक गाना गा, मैं सुनूँगी।

रजिया—(खुशीके साथ) सुनोगी?—अच्छा ठहरो, तंबूरा ले आऊँ। (दौड़कर जाती है।)

गुलनार—चाहे जो हो, मैं एक दफा उसे चाहती हूँ। उसके गरूरको चूर करूँगी। ऐसी मजाल? मेरे सामनेसे एक मर्द सिर झुकाये बिना चला जायगा? चाहसे, इश्कसे, उसका दिल बेचैन न होगा? घुटने टेककर मेरी एक प्यारकी नजर पानेके लिए मिन्नतें न करेगा?—ऐसा अन्धेर? हुस्नकी ऐसी बेइज्जती?

[रजियाका प्रवेश।]

रजिया—(तंबूरा गोदमें रखकर) क्या सुनोगी?

गुलनार—कल रातको छतके ऊपर तू जो गा रही थी।

रजिया—वह? वह चीज तो मैं तंबूरेपर न गा सकूँगी।

गुलनार—तो यों ही गा।

(रजिया तंबूरा रखकर खडी होकर गाती है।)

गीत।

छिपाके अपने हृदयको अब तो ए मेरी सजनी रहा न जाता।
बढ़ी है गंगा, उठा है तूफान जल उछलता है थरथराता॥
थपेड़े देती हुई किनारे उमंगसे नाचती हैं लहरें।
ये जोर तूफान बाँधसे क्या मैं रोक सकती हूँ हे विधाता?
न मानके इस मना कियेको सुनूँगी मैं, मनमें ठान ली है।
न सोहता अब है मान, ऐसे समय न अभिमान ही सुहाता।
ये मानकी नाव अब बहाकर, प्रचण्ड तूफान बीच सजनी—
उमंगमें फाँद ही पड़ूँगी, समझमें मेरी यही है आता॥
तरंगपर इसकी चढ़ चलूँगी, कहाँ पड़ूँगी, ये आज देखूँ।
लगाई बाजी है जिंदगीकी, न शर्मका ख्याल मनको भाता॥

रजिया—क्यों अम्मीजान, कैसी अच्छी गजल है !

गुलनार—(अनसुनी करके) सचमुच उमंगकी आँधी उठी है। इस तूफानको सब्र और समझके बाँधसे रोकना बिलकुल ही नामुमकिन है । और रोकनेकी जरूरत ही क्या है ! प्यारकी भारी लहर आकर मुझे बहा ले जाय, मुझे डुबा दे । निरालेपनमें ही मेरी दिलचस्पी है । जिसे कोई नहीं कर सकता वही करनेमें मुझे फख्र है ।—मैं दुर्गादासको चाहती हूँ । जसवन्तकी रानीको पकड़नेका तो सिर्फ बहाना है । मेरा शिकार दुर्गादास है । औरंगजेब,—मारवाड़पर चढ़ाई करो । मैं दुर्गादासको चाहती हूँ । (प्रस्थान ।)

रजिया—अम्मीजानका ढंग तो कुछ समझमें नहीं आता । न जानें क्या बुदबुदाती हुई चली गईं । ऐसी उम्दा गजल—ऐसा उम्दा गाना—कुछ भी नहीं समझीं । (वही गजल गाते गाते प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।



स्थान—मारवाड़का पहाड़ी स्थान ।

समय—प्रातःकाल ।

[दुर्गादास और भीमसिंह दोनों आमने सामने खड़े हैं । थोड़ी दूरपर गाँवोंके रहनेवाले लोग कोलाहल कर रहे हैं ।]

दुर्गा०—भीमसिंह, अबकी बार बादशाह सारी मुगल-सेना लेकर मारवाड़पर चढ़ाई कर रहे हैं । अबकी हम लोगोंके लिए जीवन-मरणकी समस्या उपस्थित है । इस बार राजपूत जातिका या तो सर्व-संहार ही हो जायगा और या यह जाति उठ खड़ी होगी—वीरवर, इस महायुद्धके लिए तैयार हो जाओ ।

भीम०—इसीके लिए पिताजीने मुझको यहाँ भेजा है। मैं इस युद्धमें प्राणतक देनेके लिए तैयार होकर आया हूँ।

दुर्गा०—सीसोदिया वीर, तुम्हारी वीरता और तुम्हारे स्वार्थत्यागकी बात मुझे अच्छी तरह मालूम है। किन्तु सुनो मेवाड़के युवराज, तुम महत् हो, पर इस समय तुमको उससे भी अधिक महत् बनना होगा—तुम वीर हो, पर इस युद्धमें तुमको वीरताकी पराकाष्ठा दिखानी होगी।

भीम०—सेनापति, आप निश्चिन्त रहिए। अपना कर्त्तव्य समझ कर मैं इस युद्धमें प्राणत्याग करने आया हूँ। वह कर्त्तव्य मेरा अपने प्रति है, पिताके प्रति है, और सारी राजपूत जातिके प्रति है। उस कर्त्तव्यके मार्गसे भीमसिंह एक पग पीछे नहीं हटनेका। आप मुझपर विश्वास रखिए।

दुर्गा०—भीमसिंह, कुमार, हमको तुमपर पूर्ण विश्वास है।

भीम—महारानी कहाँ हैं?

दुर्गा०—वे इस समय सारे मारवाड़में—नगरोंमें, गाँवोंमें, जंगलोंमें, पहाड़ोंमें सर्वत्र फिर ही रही हैं। वे खुद सेना इकट्ठी कर रही हैं। राजपूत जातिको उत्तेजित उत्साहित कर रही हैं। इसीसे उन्हें एकत्र करनेका काम महारानी खुद कर रही हैं।

भीम०—मैं एक बार उनसे मिलना चाहता हूँ।

दुर्गा०—आज ही उनसे मुलाकात होगी कुमार, वे आज इसी गाँवमें आनेवाली हैं। मैं उन्हींसे मिलने यहाँ आया हूँ।

[समरदासका प्रवेश।]

दुर्गा०—कुछ खबर मिली भैया?

समर० —हाँ, मुगल सेनापति तहव्वरखाँ, ७०,००० फौज लिये मारवाड़की ओर आ रहा है। पीछे शाहजादा अकबरके साथ और भी फौज आ रही है।

दुर्गा०—और बादशाह ?

समर०—वह भी सेना लिए अजमेरमें ठहरे हैं। उनके साथ एक लाखसे भी अधिक सेना है।

(दुर्गादास भीमसिंहकी ओर देखते हैं।)

भीम०—राठौरोंकी सेना कितनी है सेनापति ?

दुर्गा०—दस हजार। हमारी एक लाखसे अधिक सेना थी। जसवन्तसिंहके मरनेसे सब इधर उधर तितर-बितर हो गई।—सेनाके अधिकांश लोग रोजगार और खेतीमें लग गये हैं। महारानी उन्हींको जमा करनेके लिए निकली हैं। इन गाँवोंके रहनेवालोंको देखते हो ? जैसे इनमें जान ही नहीं है। किन्तु ये ही लोग उत्तेजित होंगे। महारानीके शब्दोंमें जैसे उत्तेजनाकी बिजली भरी हुई है। वे जैसे आज किसी स्वर्गीय प्रेरणासे यह काम कर रही हैं। उनकी बातें आज ठंडे पत्थरको भी गर्म कर सकती हैं—कायरको भी जोशसे पागल बना सकती हैं।

भीम०—वे देखो महारानी आ रही हैं।

दुर्गा०—हाँ, वे आ रहीं हैं कुमार, जरा हटकर खड़े होओ।

भीम०—निःसन्देह, यह अपूर्व रूप है सेनापति, ऐसा रूप तो मैंने कभी नहीं देखा! कैसी दानव-दलनी चण्डिकाकी मूर्ति है! पीठपर घने बिखरे हुए केश, आँखोंमें दिव्य ज्योति, मस्तकपर अपूर्व गर्वकी झलक और ओठोंपर अभयवरदायिनी शान्तिकी रेखा देखकर ऐसा कोई न होगा जो सिर झुकाकर इस देवीकी आज्ञा माननेके लिए तैय्यार

न हो जाय। बस, अब कुछ भय नहीं है दुर्गादास, स्वयं जननी जन्मभूमि इस रूपसे हमारी सहायता करनेको खड़ी हुई हैं—अब कुछ डर नहीं है।

[दुर्गदास और भीमसिंह आड़में हो जाते हैं। रानी और उनके पीछे ग्रामवासी प्रवेश करते हैं।]

ग्रामवासी—जय रानी माईकी जय !

१ ग्राम०—महारानीके लिए जगह दो।

२ ग्राम०—हम महारानीको अच्छी तरह देख नहीं पाते।

३ रानी—(पासके एक ऊँचे पत्थरपर खड़े होकर) ग्रामवासियो, सैनिको, पुत्रो,—

३ ग्राम०—हमें सुन नहीं पड़ता। हम सुन नहीं पाते।

रानी—सुन पड़ेगा। चुप होकर सुनो।

४ ग्राम०—सब लोग चुप होकर, मन लगाकर सुनो।

रानी—सुनो, आज मैं यहाँ क्यों आई हूँ—सुनो—

[ग्रामवासियोंमें कोलाहल।]

५ ग्राम०—अरे भाई चुप होकर सुनते क्यों नहीं, सुनो।

रानी—पहले मैं अपना परिचय दूँ। सुनो मैं कौन हूँ ?

६ ग्राम०—अरे भाइयो, चुप रहो, सुन नहीं पड़ता है।

रानी—मारवाड़के रहनेवालो, मैं जसवन्तसिंहकी रानी हूँ। बादशाह औरंगजेबकी चालाकीसे अफगानिस्तानमें मेरे स्वामी—तुम्हारे राजा—जसवन्तसिंहकी मौत हुई। मेरे बड़े लड़के—तुम्हारे राजकुमार—पृथ्वीसिंहकी औरंगजेबके छलसे विषके द्वारा मृत्यु हुई। मेरा छोटा लड़का—तुम्हारा होनहार राजा—अजितसिंह औरंगजेबकी आँखोंका काँटा होनेके कारण एक एकान्त स्थानमें छिपाकर रक्खा गया है। और मैं—तुम्हारी रानी—राह राह मारी मारी फिर रही हूँ।

[ग्रामवासियोंका कोलाहल ।]

७ ग्राम०—तो हम क्या कर सकते हैं !

८ ग्राम०—हममें उतनी ताकत ही नहीं है ।

९ ग्राम०—किन्तु बादशाहके ऐसे घोर अत्याचारको रोकनेके लिए कुछ न कुछ उपाय अवश्य करना चाहिए ।

१० ग्राम०—हमारी तो रानी हैं । हम न करेंगे तो और कौन करेगा ?

रानी—सुनो ग्रामवासियो—किन्तु मैं अपना ही दुःख जतानेके लिए तुम्हारे पास नहीं आई हूँ । मै आई हूँ आज सुंदर मारवाड़के लिए तुमसे सहायता माँगने । बादशाह एक लाखसे अधिक सेना लेकर मारवाड़पर चढ़ाई किये आ रहे हैं । तुम लोग मारवाड़की सन्तान हो, तुम राजपूत हो; तुम वीर कहकर प्रसिद्ध हो । तुम क्या निश्चिन्त होकर खड़े खड़े अपनी जन्मभूमिको परपददलित होते—लुटते और मिटते—देख सकोगे ?

११ ग्राम०—एक लाखसे अधिक सेना ! हाय अभागे मारवाड़ !

१२ ग्राम०—सेनापति अगर झालावाड़पर चढ़ाई न करते तो यह आफत न आती ।

१३ ग्राम०—हाँ । सोते हुए शेरको जगाना यही कहलाता है ।

१४ ग्राम०—एक लाख मुगल-सेनासे युद्ध करना हीनवीर्य मारवाड़के लिए कभी संम्भव नहीं ।

१५ ग्राम०— किसी तरह नहीं ।

रानी०—संभव नहीं है ? संभव नहीं है ? तो तुम यहीं चुपचाप खड़े खड़े देखोगे कि तुमको निकालकर—नष्टकर मुगलोंकी सेना इस तुम्हारी स्वर्णभूमिपर अधिकार कर ले ? हा, धिक्कार है ! इतना

पतला पानी भी अगर उसे उसकी जगहसे हटाओ तो बाधा देता है। और तुम चुपचाप, कोई चेष्टा न करके, अपना देश शत्रुओंको सौंप दोगे? तुम हिन्दू हो! तुम राजपूत हो! तुम क्षत्रिय हो!—फिर भी कहते हो कि सम्भव नहीं है? जसवन्तसिंह अगर जीते होते, तो उनके सामने यह कहनेका साहस तुम्हें न होता। उनके लिए तुम सब प्राण देनेको तैयार थे। जसवन्तसिंहकी एक दृष्टिसे तुम्हारा खून गर्म हो उठता था, उनकी एक बातसे दस हजार तरवारें म्यानसे खिंच जाती थीं, उनको घोड़ेपर सवार देखते ही तुम्हारी 'जय-ध्वनि' आकाशमें गूँज उठती थी। मैं स्त्री हूँ। मैं उनकी विधवा अनाथ स्त्री हूँ। मैं आज फकीर—कंगालसे भी बदतर हो रही हूँ। मेरी बात तुम क्यों सुनोगे? मैं तो अब तुम्हारी रानी नहीं हूँ?

सब ग्रामवासी—आप हमारी महारानी हैं। हम आपकी बात सुनेंगे।

रानी—अच्छा अगर सुनोगे तो अपने गाँवों और झोंपड़ोंको छोड़ कर आओ। तरवारको लो। उठो, इस उदासीनताको छोड़ो। एक बार दृढ़ होकर उठ खड़े होओ। उठो, जैसे तुरहीके शब्दसे सोता सिंह जाग उठता है। उठो—जैसे पूँगीकी ध्वनि सुनकर सर्प फुफकार उठता है। उठो—जैसे बिजलीकी कड़कसे पहाड़की कन्दराओंमें प्रतिध्वनि जग उठती है। जैसे तूफानमें समुद्रकी लहरें उठती हैं। उठो, राजस्थान जाने, औरंगजेब जाने कि तुम्हारी वीरता गुप्त थी, लुप्त नहीं हुई।

सब ग्राम०—महारानी, हम युद्ध करेंगे। किन्तु इस युद्धमें जीतनेकी आशा नहीं है। मरना ही हाथ लगेगा।

रानी—मरना? पुत्रो, एक दिन क्या मरना न होगा? बिछौनेपर पड़े पड़े दुर्गतिसे मरना सुखकी मौत नहीं है। अपनी इच्छासे, देशके लिए, औरोंके लिए, कर्तव्यके लिए मरना ही सुखकी मौत है।

सब ग्राम०—हम लड़ेंगे महारानी। आप जहाँ ले जायँगी वहाँ चलेंगे।

रानी—यही तो तुम्हारे योग्य बात है। सुनो, मैं किसीको उसकी इच्छाके विरुद्ध नहीं बुलाती। अगर किसीको अपनी जन्म-भूमिका खयाल हो, यदि किसीको अपने धर्मपर भक्ति हो, यदि कोई स्वाधीनताके लिए प्राण देनेको तैयार हो, तो वह आवे। वह अकेले ही एक सौके बराबर है। कच्चे दिलके, दुविधामें पड़े हुए आदमि-योंको मैं नहीं चाहती। मुझे एकाग्र और दृढप्रतिज्ञावाले आदमी चाहिए। दो रास्ते हैं, पसंद कर लो।–एक तरफ विलास, आमोद, आराम, और भोग है; दूसरी तरफ मेहनत, अनाहार, दारिद्य और दुःख है। एक ओर संसार, घरबार और शान्ति है; दूसरी ओर देशके प्रति कर्तव्य है—पसन्द कर लो।

सब ग्राम०—हम कर्तव्य-पालनको ही पसन्द करते हैं।

रानी—अच्छी बात है। तो आज सब राठौर एक झंडेके नीचे खड़े हो जाओ। आपसके छोटे बड़े सब झगड़ोंको भूल जाओ। एक बार सब मिलकर हृदयसे पुकारो—जननी जन्मभूमिकी जय।

सब ग्राम०—जननी जन्मभूमिकी जय।

चौथा दृश्य।

स्थान—युद्धभूमिमें रजियाका डेरा।

समय—रात्रि।

[पानी बरसता है, हवा चलती है, बिजली चमकती है, और बादल गरजते हैं।

रजिया गा रही है।]

गीत।

गगनमें घोर घटा घनकी घेर आई है।
प्रलयकी ऐसी अँधेरी जगतमें छाई है।
फुहार लेके झकोरे हवाके चलते हैं।
ये आँधी पानीकी कैसी बिकट लड़ाई है।
गरज रहे हैं ये बादल जो गड़गड़ाहटसे।
चमकसे बिजलीकी दिलमें दहल समाई है।
प्रचण्ड अंधड़ आँधी हुई है पगली सी।
गगनसे उठके ये धरतीकी ओर धाई है।
बिखेर बालोंको यह अट्टहास करती सी।
आवाज 'हा हा' की करती बलन्द आई है।
चमकसे कौंधेकी आँखें हैं चौंधियाई सी।
ये कड़कड़ाती है बिजली! खुदा, दोहाई है॥

रजिया—ओः! या खुदा! यह कैसा शोर-गुल है! फौजकी चिल्लाहट! तोपोंका गरजना! जंगी बाजोंकी धमाचौकड़ी!—एका-एक यह क्या होने लगा! कान जैसे फटे जा रहे हैं!

(कानोंपर हाथ रखना)

(अकबरका प्रवेश।)

रजिया—कौन? अब्बा?

अकबर—हाँ रजिया!

रजिया—ओः ! आप तो सिरसे पैरतक तरबतर हो रहे हैं ! बाहर यह क्या हो रहा है ! इतना शोर-गुल क्यों मचा हुआ है !

अकबर—जंग हो रहा है । राजपूतोंने हमारी छावनीपर छापा मारा है ।

रजिया—छापा मारा है सो तो खैर, लेकिन ये इतना बेसुरे चिल्लाते क्यों हैं ?

अकबर—तू नहीं समझ सकती रजिया, कि मामला कितना बेढब है । ओः ! एकपर एक करके हजारों लाशें गिर रही हैं !

रजिया—सो तो समझी । लेकिन मैं यह पूछती हूँ कि इतना चिल्लाते क्यों हैं ?

अकबर—क्या बकती है रजिया—यह खास मौतका सामना है ! मौतको इतने नजदीकसे मैंने कभी नहीं देखा !—ओः ! तुझे खबर है कि बाहर कितने लोग मर रहे हैं ?

रजिया—इसीसे भाग आये हो अब्बा ? डर लगता है ? डर क्या है अब्बा ?

अकबर—शायद आज मुझे और तुझे भी मरना पड़ेगा ।

रजिया—अगर मरना ही होगा तो गाते गाते मरूँगी ! किनारेसे टकराई हुई लहरकी तरह ही गाते गाते मौतमें मिल जाऊँगी !

अकबर—(कान लगाकर) यह क्या ! बार बार राजपूतोंका ही 'जय जय' का नारा बलन्द हो रहा है !—लो, दुश्मन लोग पास ही आ गये !

नेपथ्यमें—जय, महारानीकी जय !

(तहव्वरखाँका प्रवेश ।)

तहव्वर०—शाहजादा साहब, भागिए भागिए ।

अकबर—क्यों तहव्वरखाँ ?

तहव्वर०—हमारी हार हो गई।

अकबर—हमारी फौज क्या कर रही है?—सब मर गई?

तहव्वर०—नहीं, सब नहीं मरी। ऐसी हालतमें, ऐसे मौकेपर समझदार लोग जो करते हैं वही वे लोग भी कर रहे हैं;—दुश्मनोंको पीछे छोड़कर—सिरपर पैर रखकर—भाग रहे हैं।

रजिया—भाग रहे हैं! यह क्या! भागते क्यों हैं? तहव्वरखाँ, राजपूतोंसे हारकर भागनेमें शर्म नहीं आती?

तहव्वर०—उनको शर्म काहेकी? वे तो औरत नहीं हैं, जो शरमाएँ।—भागिए शाहजादा साहब, अभी वक्त है।

रजिया—मैं नहीं भागूँगी। भागूँ क्यों? न होगा मर जाऊँगी। अब्बा, तुम मुगल होकर, किस मुँहसे भागोगे?

तहव्वर०—जिस तरफ जंग हो रहा है उस तरफसे ठीक उल्टा मुँह करके। और किस मुँहसे भागा जाता है?

रजिया—मैं नहीं भागूँगी।

तहव्वर०—आप नहीं भागिएगा तो हम ही भागें। आप औरत हैं—आपको शायद कुछ शर्म हो, लेकिन हमको भागनेमें कुछ शर्म नहीं है!—क्यों न शाहजादा साहब!

अकबर—ओः! कैसी खतरनाक रात है! कैसी हाय हाय मच रही है! कैसी मार-काट हो रही है!

बाहर—भागो, भागो! जय रानीकी जय! हरहर बमबम!

रजिया—ओः, कैसा शोरगुल है!

तहव्वर०—क्या सोच रहे हो शाहजादा साहब, चलिए, आइए। आप तो मुझे औरतोंसे भी निकम्मे देख पड़ते हैं!

अकबर—ओः कैसी मारकाट मची हुई है ! इतनी मारकाट मैंने कभी नहीं देखी ।

तहव्वर०—यों खड़े रहनेसे क्या होगा ।—यह—यह—देखिए, डेरेके दरवाजेपर—इस तरफकी राहसे—वह दुश्मन—

(तहव्वरखाँका भागना ।)

अकबर—चलो, चलें रजिया, हम भी भाग चलें ।

रजिया—अच्छा !

अकबर—चुप, इधरसे—इधरसे चुपचाप चली आ ।

(रजियाको लेकर अकबरका प्रस्थान ।)

(दो राजपूत सिपाहियोंका प्रवेश ।)

१ सिपाही—कोई नहीं है— भाग गये । किधरसे भागे ?

२ सिपाही—इधरसे— –

(सिपाहियोंका प्रस्थान ।)

(समरदास और राजपूत सेनाका प्रवेश ।)

समर०—बोलो—भगवान् एकलिंगकी जय ।

सब—जय, भगवान एकलिंगकी जय ।

समर०—भीमसिंह कहाँ है ?

१ सिपाही—वे देख नहीं पड़ते ।

समर०—जाओ, उनका पता लगाओ ।

(समरदासके सिवा सबका प्रस्थान ।)

समर०—ओह कैसी रात है ! कैसा युद्ध है ! कैसा भयानक हत्याकाण्ड है !

पाँचवाँ दृश्य।



स्थान—मेवाड़का एक पहाड़ी किला। तालाबके किनारे दो पत्थरके चबूतरे।
समय—चाँदनी रात।

(कमला एक चबूतरेपर अकेली बैठी गा रही है। जयसिंह अलक्षित भावसे प्रवेश करके पीछे खड़े हो गाना सुनते हैं।)

गीत।

आओ आओ हृदयमें सखा प्राणके, यह जुदाई बहुत दिनकी होवे खतम
दे बरस, प्रेम-पीयूष-रस सींचकर प्यासे प्यासे हृदयकी बुझाओ बलम
वनके फूलोंकी फैली महक हरतरफ, जैसे उससे हैं आकुल हुए कुंजवन
गूँजती वनमें है मर्मराहट भली, नाचती पत्तियाँ वायुसे दम-ब-दम॥
चल रही है हवा चाल धीमी किये, गा रही मस्त कोयल कुहू-तानसे।
देखता शुभ्र शोभा शरत्कालकी चंद्रमा भी गगनमें गया जैसे थम॥
चाँदनी रात कैसी भली है अहो, कैसे तारे चमकते हैं आकाशमें।
कैसी सुंदर है चुपचाप पृथ्वी अहो, कुञ्ज कैसे हैं नीरव न नन्दनसे कम।
बैठी चंचल मैं अंचल बिछाये हुए काँपती नाथ शंकासे व्याकुल हुई।
आओ प्रियतम हृदयको है धीरज नहीं,
लाख देती दिलासा न माने बलम

कमला—(फिरकर) कौन?—तुम हो!

जयसिंह—हाँ मैं हूँ।

कमला—कितनी देरसे खड़े हो?

जय०—बड़ी देरसे खड़ा हूँ।

कमला—खड़े खड़े क्या कर रहे थे?

जय०—सुन रहा था।

कमला—क्या?

जय०—सुनता था वीणाकी ध्वनिके साथ मृदंग!—क्या सुनता था? क्या सुनता था, सो तो ठीक बता नहीं सकता, किन्तु जो सुन रहा था उसे पहले कभी नहीं सुना था।

कमला—समझी। तुम मेरा गाना सुन रहे थे।

जय०—गाना ही होगा। मैं तो अबतक इस लोकमें था नहीं—जैसे किसी स्वप्न-राज्यमें था। किन्तु सुनता था?—या देखता था?—शायद देखता था कि कुछ सुन्दर किशोर स्वर अपने उज्ज्वल पंख फैलाकर आकाशमें विचर रहे हैं। अन्तको वे स्वर और भी घने होकर, और भी गद्गद होकर, और भी उज्ज्वल होकर एक एक करके नक्षत्रोंमें लीन हो गये।

कमला—अपनी यह कविता रहने दो, तुम्हारी इस कविताका एक अक्षर भी मेरी समझमें नहीं आता। सीधी बोलचालमें कहो तो कुछ समझमें भी आवे।

जय०—कमला, तुम यह हृदयसे गा रही थीं? या जो कुछ याद आ गया वही गा रही थीं?

कमला—तुम्हें क्या जान पड़ता है?

जय०—मैं भी ठीक नहीं कह सकता। हाँ, बीच बीचमें यह जरूर जान पड़ता है कि तुम कोई जादू जानती हो, तुमने मुझपर जादू कर दिया है।

कमला—जादू करनेकी कोई जरूरत नहीं। तुम खुद ही जादू हो।

जय०—मैं बिलकुल ही निर्जीव, निस्तेज, निकम्मा हो गया हूँ।—यह क्या प्रेम है? या मोह है?

कमला—चाहे जो कहो, फल एक ही देख पड़ता है। तुम मेरे ताबेमें हो।

जय०—अगर यह प्रेम है तो बड़ा ही भयानक है।

कमला—भयानक है?

जय०—भयानक नहीं है ? जो प्रेम उत्साह और तेज मिटाकर मनुष्यको ज्ञानशून्य बना देता है वह भयानक नहीं तो क्या है ? जिस प्रेममें मनुष्य सारे विश्व-ब्रह्माण्डको भूल जाता है—अपने मनुष्यत्वको गवाँ देता है, वह प्रेम—वह अवस्था—निस्सन्देह भयानक है !

कमला—बेशक ! यह बहुत ही भयानक है ! रोग कठिन है ! इसकी दवा करनी चाहिए। बड़ी रानीको बुला दूँ क्या ? वे ही तुम्हारे इस रोगको दूर कर सकती हैं। देखो न उस दिन दो चार सख्त बातें कहकर उन्होंने तुमको युद्धमें भेज दिया। बुलाऊँ ?

जय०—नहीं कमला, इस रोगकी दवा वह भी नहीं कर सकतीं। यह रोग असाध्य हो गया है—इसे कोई अच्छा नहीं कर सकता। सुनो कमला—मारवाड़पर बादशाह औरंगजेबने चढ़ाई की है। पिताजीने उस दिन मुझे बुला भेजा था। मेरे पहुँचनेपर उन्होंने कहा—"जाओ पुत्र, दुर्गादासकी सहायता करो।" मैं सिर झुकाकर रह गया। उन्होंने कहा—"क्यों जयसिंह, चुप क्यों रह गये ?" मैं फिर भी सिर झुकाये रहा। तब उन्होंने कहा—"समझा, अच्छा महलमें जाओ; मैं भीमसिंहको भेजता हूँ।" आखिर मैं सिर झुकाये चला आया। पीछेसे सरस्वतीने आकर बड़ी फटकार बताई। मैंने कुछ नहीं कहा। मनमें अपने ऊपर धिक्कारका भाव पैदा हुआ। मुझे तुमने यह क्या कर दिया कमला ! तुमने मुझे कैसे मोहमें डाल रक्खा है !—कैसे नशेमें बेहोश बना रक्खा है !

कमला—किन्तु मैंने तो कुछ तुमको खिलाया-पिलाया भी नहीं।—धर्मकी सौगंध, तुम मुझे नाहक दोष लगाते हो।

जय०—नहीं कमला, मैं तुमको दोष नहीं लगाता।—एक दिन मैंने तुमसे पुछा था कि "रूप क्या मदिरा है ?" किन्तु इस समय देख पड़ता है कि रूप—

कमला—अफीम है ! मैंने भी यही उस दिन कहा था, लेकिन तुमने विश्वास नहीं किया ।

जय०—कमला, मैं तुमको चाहता हूँ ।

कमला—यह तो कई बार सुन चुकी हूँ ।

जय०—बार बार कहकर भी तृप्ति नहीं होती । इसीसे फिर कहता हूँ कि तुमको चाहता हूँ । यह कहना मुझे बहुत अच्छा लगता है ।

कमला—तो फिर जितनी दफा जी चाहे, कहो । पर मुँहसे चाहे जो कहो, काम तो तुम बड़ी रानीके कहनेके माफिक ही करते हो ।

जय०—मैं !

कमला—नहीं तो क्या मैं ?—मुझे तुम्हारा जबानी प्यार मिलता है, और काम निकाल लेती हैं बड़ी रानी ।

जय०—कैसे ?

कमला—क्या तुम नहीं जानते ? कहनेकी क्या जरूरत है ।

(रूठकर चल देना ।)

जय०—सुनो कमला,—नहीं । यह स्त्रियोंका दमभरका रूठना है । परमेश्वर, तूने यह कैसी अपूर्व जाति तैयार की है ! रोना और हँसना—वर्षा और धूप—कैसी अपूर्व सृष्टि है !

[सरस्वतीका प्रवेश ।]

सर०—नाथ !

जय०—सरस्वती !

सर०—मारवाड़में मुगलों और राजपूतोंकी लड़ाईका फल सुना ?

जय०—नहीं ।

सर०—सुनना चाहते हो ? अवकाश है ?

जय०—कहो।

सर०—लड़ाईमें मारवाड़की जीत हुई। लेकिन—

जय०—लेकिन ?

सर०—लेकिन तुम्हारे भाई अब इस संसारमें नहीं हैं।

जय०—कौन, भीमसिंह ?

सर०—(गद्गदस्वरसे) हाँ, उन्होंने मारवाड़की रक्षाके लिए इसी युद्धमें प्राण अर्पण कर दिये।

जय०—महत् उदार वीर भाई, तुम अक्षय-स्वर्गको गये।

सर०—और तुम ?

जय०—शायद नरकको।

सर०—हाय नाथ ! (प्रस्थान।)

जय०—सरस्वती, मुझसे घृणा न करो। मैं दयाका पात्र—असमर्थ हूँ।—वे पिताजी आ रहे हैं। साथमें मारवाड़की रानी और समरदास हैं। पिताकी तिरस्कार और करुणासे पूर्ण दृष्टि मेरे लिए असह्य होगी। (प्रस्थान।)

(राजसिंह, रानी और समरदासका प्रवेश।)

राज०—यहींपर बैठो बहिन, भीतर बड़ी गर्मी है—इसी जगह चाँदनीमें बैठो—यह स्थान भीमसिंहको बहुत प्यारा था। वह सबेरे यहाँ आकर बैठता था और एकाग्र होकर इस नील-सरोवरकी शोभा देखा करता था।

(सबका शिलापर बैठना।)

रानी—राणाजी, भीमसिंहकी वीरताका वर्णन इतिहासमें सोनेके अक्षरोंसे लिख रखनेकी चीज है।

राज०—मैंने उसे खो दिया—सदाके लिए गवाँ दिया।

रानी—रानाजी, युद्धमें मरनेसे बढ़कर क्षत्रियके लिए गौरवकी मृत्यु और कौन हो सकती है ? भीमसिंह अगर मेरा पुत्र होता, तो मैं उसकी और तरहसे मृत्यु कभी न चाहती।

राज०—तुम सच कहती हो महामाया।—कहो समरदास, भीमसिंहने कैसा युद्ध किया ?

समर०—वैसा युद्ध आजतक किसीने नहीं किया होगा राणा साहब! सुनिए—उस दिन रातको घोर अन्धकार था, आकाशमें बादल घिरे हुए थे, मूसलधार पानी पड़ रहा था। ऐसा घना अन्धकार था कि हाथको हाथ नहीं सूझता था। बारबार बिजली चमकनेसे उस अँधेरी रातकी भयंकरता दिख जाती थी। बिजलीकी कड़क उस भयंकरताको और भी बढ़ा रही थी। उः—कैसी भयानक रात थी!

रानी—उसके बाद ?

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) ऐसी रात थी!— ऐसी रात थी!

समर०—उसी भयानक रातमें आपके वीर कुमारने हम लोगोंके बारबार मना करनेपर भी, केवल १०,००० मेवाड़की सेना लेकर मुगलोंकी छावनीपर धावा कर दिया—मुगलोंकी सेना एक लाखसे भी अधिक होगी!

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) मैंने उसे निकाल दिया था—उसे निकाल दिया था!

रानी—धन्य सिसोदिया-कुमार, उसके बाद ?

समर०—उसके बाद "हरहर—बमबम" के सिंहनादने उस बिजलीकी कड़कको भी मात कर दिया और शत्रुसेनाके आर्तनादमें पानी बरसनेका शब्द लीन हो गया।

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) मैंने अपने ही दोषसे उसे खो दिया!—

रानी—फिर ?

समर०—तब मैं १०,००० राठौर सेना लेकर भीमसिंहकी सहायताके लिए गया। जाकर देखा—उस बिजलीके प्रकाशमें जो दृश्य मैंने देखा उसे कभी नहीं भूल सकता राणा साहब !

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) उस दिन उसने कहा था—कुँअरने उस दिन कहा था कि युद्धमें प्राण देने जाता हूँ।

रानी—कहो समरसिंह,—

समर०—महारानी, बिजलीके प्रकाशमें देखा कि शत्रुओंकी सेना बन्दूक, तलवार, भाले वगैरह लिये घूमकर खड़ी हुई है। भीमसिंहकी सेना एक विश्वग्रासी प्रलयकी बढ़ियाकी तरह उसके ऊपर जा पड़ी। वैसे ही शत्रुओंकी तोपों और बन्दूकोंसे अग्निवर्षा होने लगी। क्या कहूँ वह कैसा घोर युद्ध था !—मुझे तो वह ज्वालामुखीकी उगली हुई ज्वालाके साथ बवंडरका युद्ध जान पड़ा था !

रानी—धन्य भीमसिंह !—उसके बाद ?

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) रूठकर चला गया। पितासे रूठकर पुत्र चला गया !

समर०—उस समय भीमसिंह मुझे बिजलीके प्रकाशमें उन्मत्तके समान—साक्षात् प्रलयके समान—देख पड़े। जहाँपर शत्रुओंकी संख्या अधिक होती थी वहीं भीमसिंह देख पड़ते थे। उनकी १०,००० सेना दस लाख जान पड़ती थी—अकेले भीमसिंह दस सेनापतियोंके बराबर काम कर रहे थे !

रानी—भीमसिंह ! तुम अगर मेरे पुत्र होते !

राज०—(लंबी साँस लेकर) रूठकर चला गया !

रानी—उसके बाद ?

समर०—इसी समय राठौरोंकी सेना भी मेवाड़की सेनाके पास सहायताके लिए पहुँच गई। हमारी सेनाके पहुँचते ही शत्रुओंकी सेना तितर-बितर होकर जान लेकर भागी। हम लोगोंने बहुत दूर-तक शत्रुओंका पीछा किया।

रानी—फिर?

समर०—पड़ावपर लौटकर आया, वहाँ भीमसिंह नहीं देख पड़े। दूसरे दिन सबेरे उनकी लाश युद्धभूमिमें देख पड़ी।

रानी—राणा साहब, आपके पुत्रने आज स्वदेशकी रक्षा की।

राज०—भीमसिंह! भीमसिंह! पुत्र—पुत्र! (मूर्च्छित हो जाते हैं।)

छठा दृश्य।

स्थान—मुगलोंका पड़ाव।

समय—दोपहर।

[शाहजादा अकबर और तहव्वरखाँ।]

अकबर—क्या कहते हो तहव्वरखाँ, लड़ाईमें हम लोगोंकी पूरी हार हुई?

तहव्वर०—पूरी हार हुई, इस बारेमें जरा भी भूल नहीं।

अकबर—ये राजपूत कैसे बहादुर होते हैं! तोपके गोलेको दोस्तकी तरह बुलाते हैं और तलवारको माशूककी तरह गले लगाते हैं!

तहव्वर०—लेकिन उनकी तलवार ठीक माशूककी तरह आकर हमारे गलेसे लगती है, यह तो मैं नहीं कह सकता शाहजादा साहब, बल्कि यह कहना ठीक होगा कि रंडीकी तरह आकर एकाएक गले पड़ती है!

अकबर—कैसी जात है ! कैसी हिम्मत है ! कैसा जोश है !

तहव्वर०—यह बात है तो अच्छी, लेकिन एक ऐब है शाहजादा साहब,—जान बचानेका मौका नहीं देती । एकदम धावा करके मरने-मारनेको तैयार हो जाती है । देखिए न, कल रातको बेफिक्र होकर डेरेमें सो रहा था । बाहर आँधी और पानीकी हलचल मची हुई थी । ऐसे वक्तमें कोई भला आदमी घरसे निकलनेकी हिम्मत नहीं कर सकता । लेकिन इन बलाके बने हुए राजपूतोंने आँधी-पानीकी कुछ पर्वा नहीं की । उसी आँधी-पानीमें धावा करके हमारी छावनीमें घुस पड़े । अगर वे बर्छी, तलवार, भाले वगैरह लेकर न आये होते, तो मैं समझता कि दिल्लगी कर रहे हैं !

अकबर—सुभानअल्लाह ! कैसी बहादुरी और दिलेरीके साथ धावा किया !

तहव्वर०—और हमारी फौज भी किस खूबसूरतीसे भागी ! सुभानअल्लाह ! ऐसी अँधेरी रातमें इस तरह भागी कि कोई ठोकर खाकर भी नहीं गिरा—यह क्या कम तारीफकी बात है ?

अकबर—लेकिन इस हारका हाल सुनकर अब्बाजान क्या कहेंगे ?

तहव्वर०—सो तो मैं ठीक ठीक नहीं बता सकता । लेकिन यह तय है कि मिठाई खानेको न देंगे । मुझसे तो चलते वक्त खूब साफ और सही उर्दूमें कह दिया था कि अगर इस लड़ाईमें मैं हारकर गया तो मेरे दोनों हाथोंमें दो लोहेकी चूड़ियाँ पहना देंगे । यह ठीक ठीक नहीं मालूम कि लहँगा भी पहनाएँगे या नहीं ।

अकबर—दिल्लगी रहने दो ।—अब क्या किया जाय ? राजपूतोंसे लड़कर जीतनेकी तो उम्मेद नहीं है ।

तहव्वर—बेशक । और इस जातसे लड़ना भी मेरी समझमें ठीक नहीं ।

अकबर—क्यों ?

तहव्वर०—ये लोग लड़ना ही नहीं जानते। उस दिन मेवाड़में देखा था ? खाना-पीना बन्द करके मारनेका ढंग सोच निकाला। यह किस किताबमें लिखा है ? उसके बाद यहाँ लड़ाई छिड़नेके पहले ही धावा कर दिया। अरे भाई लड़ना हो तो लड़ो। तलवार लो, दो दफा आगे बढ़ो, दो दफा पीछे हटो, पैंतरे दिखाओ, चक्कर काटो। यह क्या कि एकदम आकर एक तरफसे काटना शुरू कर दिया ! जैसे हमारे सिरोंको बेवारिसी माल समझ लिया !

अकबर—नहीं तहव्वरखाँ, इस जातके ऊपर जितना ही मैं गौर करता हूँ उतना ही इनकी मुखालफत करनेको जी नहीं चाहता !—इन लोगोंकी मदद मिले तो मैं सारी दुनियामें अपना सिक्का चला सकता हूँ।

तहव्वर०—इन लोगोंकी मदद मिलनेसे आप सिक्का चला सकते हैं, न मिलनेसे तो नहीं ?—अच्छा एक काम तो आप कर सकते हैं ?

अकबर—क्या ?

तहव्वर०—ऐं—यह तो बहुत ही सहल काम है। अभीतक मुझे सूझा ही नहीं।—बहुत ही सीधा काम है। यह तो कुछ मुश्किल ही नहीं है !

अकबर—क्या ! क्या !

तहव्वर—मैं जितना सोचता हूँ, उतना ही सहज जान पड़ता है ! सुनिए—आप बादशाह होना चाहते हैं ?

अकबर—किस तरह ?

तहव्वर०—किस तरह ?—इतना छिपनेसे काम नहीं चल सकता।—पहले यह कहिए कि आप चाहते हैं या नहीं ?

अकबर—हाँ, चाहता हूँ।

तहव्वर०—मगर बादशाहत क्या गली गली मारी मारी फिरती है ?

अकबर—तुम्हीं तो कहते हो।

तहव्वर०—बिना कोशिशके कुछ नहीं हो सकता। सुनिए, बादशाहत पानेका एक बहुत ही सहल ढंग है।

अकबर—क्या ! क्या !

तहव्वर०—यही राजपूतोंकी जात—हा:हा:हा:—है न बहुत सहल ?

अकबर—किस तरह ?—बहुत ही सहल है !

तहव्वर०—बहुत ही सहल है !—बकौल आपके राजपूतोंकी कौम बहुत अच्छी और जोरावर है। मान लीजिए, ये लोग अगर औरंगजेबको उतारकर आपको तख्तपर बिठा दें। कुछ हर्ज है ? हमारी फौज और राजपूतोंकी फौज अगर दोनों मिल जायँ ?

अकबर—मैं भी तो ठीक यही सोच रहा था।—सुभानअल्लाह !

तहव्वर०—अरे सुनिए। यह रंडीका गाना नहीं है कि बिना सुने ही चिल्ला उठिए—सुभानअल्लाह ! अखीर तक सुनिए—सवाल यह हो सकता है कि राजपूत लोग हमारे शरीक होंगे या नहीं ?—हमारे मारे तो उनका खाना-पीना हराम है !

अकबर—हाँ, यह सवाल तो हो ही सकता है !—ए: बना बनाया खेल बिगाड़ दिया !

तहव्वर०—लेकिन इसका जवाब बहुत सहल है।

अकबर—क्या ?

तहव्वर०—इसका जवाब यह है कि क्यों न शरीक होंगे !

अकबर—वाह, बहुत ही सहल जवाब है !

तहव्वर०—राजपूत लोग दाराकी तरफसे क्या नहीं लड़े? खुद बादशाह (औरंगजेब) की तरफसे नहीं लड़े?

अकबर—मैं भी तो वही कह रहा था।

तहव्वर०—मगर—

अकबर—फिर मगर!

तहव्वर०—लेकिन इस बारेमें इतमीनान कर लेनेकी जरूरत है। मैं कहता हूँ, राठौर दुर्गादाससे यह कहकर उनकी मंशा दर्याफ्त कर लेनेसे सब साफ हो जायगा।

अकबर—मैं भी तो वही कह रहा था। बस, तो तुम राजपूतोंके पड़ावमें जाओ।

तहव्वर०—इस बारेमें मुझे उज्र है। दुर्गादास अगर उस वक्त उसी तरह तलवार खींचकर नाकके सामने घुमावे—और मुझे धड़-पर सिर न देख पड़े?

अकबर—दुर्गादास तलवार न निकालेगा।

तहव्वर०—अगर निकाले?

अकबर—तब कहना—हाँ!

तहव्वर०—तब 'हाँ' कहनेकी फुरसत ही कहाँ मिलेगी? अगर मेरा सिर ही कटकर मेरे पैरोंके पास गिर पड़ा, तो फिर मैं 'हाँ' कहूँगा किस तरह?

अकबर—तो फिर क्या करना चाहिए?

तहव्वर०—एक ढंग है। दुर्गादासको यहीं बुलाओ। पहाड़ अगर महम्मदके पास नहीं जा सकता, तो महम्मद तो पहाड़के पास आ सकता है।

अकबर—बस—यह भी हो सकता है। मैं भी तो यही—

तहव्वर—यह भी हो सकता है तो यही हो। सब गड़बड़ मिट गई न? तो मैं अब जरा नाक बजाने जाता हूँ।

(बन्दगी करके तहव्वरखाँका जाना ।)

अकबर—(आप ही आप) बुरा क्या है! इसके सिवा मेरे बादशाह होनेकी और कोई तदबीर तो नहीं देख पड़ती।—कमसे कम आजिमकी जिन्दगीमें! ओः! कैसा बादल गरज रहा है।

[रजियाका प्रवेश ।]

रजिया—अब्बा, बाहर आओ। पत्थर गिर रहे हैं—पत्थर गिर रहे हैं।

अकबर—गिरने दे।

रजिया—देखोगे नहीं! (हाथ पकड़कर खींचती है।)

अकबर—हिश! तू इतनी बड़ी हुई है! तुझे ढिठाई करने शर्म नहीं मालूम होती? जा।— (उदासभावसे रजियाका प्रस्थान ।)

अकबर—देखूँ, किनारे बैठकर लहरें गिननेसे क्या होगा? फाँद-कर देखूँ! जो होना होगा, होगा।—रमजान, शराब ला। शीरी-जान वगैरहसे उस तंबूमेंसे आनेके लिए कह दे।

सातवाँ दृश्य ।



स्थान—मुगलोंका पड़ाव।

समय—रात्रि ।

[मुकुट पहने हुए अकबर तख्तपर बैठे हैं। सिरपर छत्र लगा है। आसपास दो दासियाँ चँवर कर रही हैं। सामने मुसाहब और रंडियाँ हैं।]

अकबर—मैं बादशाह अकबर नंबर दो हूँ। क्यों न?

१ मुसा०—हाँ ।

अकबर—मेरे सिरपर ताज है न ?

२ मुसा०—जी हाँ ।

अकबर—मेरा झंडा उड़ रहा है न ?

३ मुसा०—जी हुजूर, खूब उड़ रहा है—फरफरा रहा है ।

अकबर—बस ! और कुछ न चाहिए, गाओ ।

(बाजा बजता है ।)

अकबर—ठहरो—बुड्ढा बादशाह इस वक्त क्या कर रहा है, बतला सकते हो ?

१ मुसा०—भाग गया ।

अकबर—उँहूँ—वह भागनेवाला नहीं है । वह लड़ेगा । यों छोड़ देगा ? लेकिन लड़े, क्या डर है ! मेरी तरफ दुर्गादास है, मैं किसीको नहीं डरता ।—तुम लोग जानते हो दुर्गादासको ?—उसे बुड्ढा बादशाह भी बहुत डरता है ।

३ मुसा०—डरता है ! हाः हाः हा !

अकबर—बेहद डरता है !—उस दिन एक तसबीरवाला शिवाजी और दुर्गादासकी तसबीरें बनाकर बुड्ढे बादशाह—यानी मेरे अब्बा औरंगजेब—के पास लाया था । शिवाजीकी तसबीर देखकर अब्बाने कहा—इसको म काबूमें ला सकता हूँ; लेकिन यह दुर्गादास बलाका बना हुआ है—यह परेशान करेगा ।

२ मुसा०—दोनों तसबीरें किस ढंगसे खिंची थीं ?

अकबर—शिवाजी तो गद्दीपर बैठे हुए थे, सिरपर ताज था, मत्थेमें टीका था । लेकिन दुर्गादास घोड़ेपर चढ़े हुए बर्छेकी नोकमें छेदकर भुट्टा भून रहे थे ।

२ मुसा०—हमको तो सुननेहीसे डर लगता है, फिर बादशाह—

अकबर—बादशाह कौन है ?

१ मुसा०—(दूसरे मुसाहबसे) हाँजी, बादशाह कौन है ?

अकबर—बादशाह तो मैं हूँ।

१ मुसा०—जहाँपनाह ही तो बादशाह हैं, खुदावन्द !

अकबर—बस—तो फिर गाओ।

(बाजा बजता है।)

अकबर—हाँ सुनो, दुर्गादास कहाँ गया ? कोई जानता है ?

३ मुसा०—कहाँ ! हम लोग तो नहीं जानते।

अकबर—हाँ ठीक है—उदयपुर गया है।—मगर मुझसे हुक्म लिये बिना क्यों गया ? क्यों गया ?—मैं बादशाह हूँ—यह उसे खबर नहीं ?—क्यों गया ?

२ मुसा०—हाँ क्यों गया !

अकबर—हाँ-हाँ ! राना राजसिंहकी बीमारीकी खबर पाकर गया है ! अच्छा, अबकी उसे माफ कर दिया।

२ मुसा०—हुजूर मा-बाप हैं।

अकबर—मैं बादशाह हूँ।

१ मुसा०—हाँ हुजूर ही तो बादशाह हैं—और कौन है ?

अकबर—बस तो गाओ !

गीत।

आहा क्या माधुरी विराजे।
नन्दन कानन भुवन साजे॥ आहा०॥
उठे रूपरंगन, तरंग अंगन, निरखत हूर हरमकी लाजे—
सुंदर शोभा अनूप राजे॥ आहा०॥

पाँयन घुँघरुन, रुनझुन रुनझुन, ताल-ताल पै सुरन सोहने बाजे—
मधुर बीना मृदु मृदंग बाजे ॥ आहा० ॥

[इसी बीचमें रजिया आकर दूरपर एक तिपाईके ऊपर दाहिने
हाथकी कोहनी रखकर—दाहिनी हथेलीपर ठोड़ी
रखकर—गाना सुनती है ।]

अकबर—सुभानअल्लाह, अगर बहिश्तमें यह सामान हो तो बेशक वह ऐश-आरामकी जगह है ।

रजिया—भूपालीमें तो कड़ी-मध्यम नहीं लगती ।

अकबर—रजिया, तू यहाँ कहाँ ?

रजिया—होगी, मिश्र-भूपाली होगी—अब्बा, अम्मी बुला रही हैं ।

अकबर—तेरी अम्मीके बापका सिर ! बुलानेका क्या यही मौका था ?—ए: सब मिट्टी कर दिया !

मुसाहब—सब मिट्टी कर दिया, जहाँपनाह, सब मिट्टी कर दिया !

अकबर—जा, भीतर जा ।—तुझे शर्म नहीं लगती !—यहाँ मेरे दरबारमें मौजूद हो गई !

रजिया—अम्मी बुला रही हैं, उनकी तबीयत बहुत बेचैन है ।

अकबर—तो इससे क्या !—तबीयत अच्छी नहीं तो हकीमको बुलाओ । मैं क्या करूँगा !—मैं अभी न चलूँगा !

रजिया—उनकी जान निकल रही है । उन्होंने कहा है—“ रजिया, तू उनसे जाकर कह कि मैं मरनेसे पहले एक बार उनको देखना चाहती हूँ । ”

अकबर—देखना ! यह कैसे हो सकता है !—सब मिट्टी कर दिया !—मरनेके लिए क्या और वक्त न था ! जा—ए ! तुममेंसे कोई इसे भीतर पहुँचा आओ !—ए ! कोई है ?

[दरबानका प्रवेश।]

अकबर—इसको भीतर पहुँचा दे।—खींचकर ले जा—देख क्या रहा है?—

दरबान—(रजियाका हाथ पकड़कर) चलिए शाहजादी।

रजिया—खबरदार!—अब्बा, यह आप अपनी लड़कीकी बेइज्जती करा रहे हैं!

अकबर—कुछ नहीं। मेरा हुक्म है।

रजिया—तुम्हारा हुक्म है!—अब्बा!—

(अपमानसे रुआसी होकर रजियाका प्रस्थान।)

अकबर—सब मिट्टी कर दिया! सब मिट्टी कर दिया!—ऐं—गाओ—नाचो—

(फिर बाजा बजता है। इसी समय तहव्वरखाँका प्रवेश।)

अकबर—कौन! तहव्वरखाँ? सिपहसालार?

तहव्वर—शाहजादा साहब—

अकबर—ए! शाहजादा क्या? कहो 'बादशाह'—'जहाँपनाह'—इधर नहीं देखते? (छत्र दिखलाना।)

तहव्वर—देखता क्यों नहीं हूँ!—मैं इधर देखता हूँ, आप उधर जाकर देखें!

अकबर—क्यों! उधर क्या हुआ?

तहव्वर—उधर राजपूत लोग आपका साथ छोड़कर चले गये।

अकबर—छोड़कर चले गये? तहव्वरखाँ, तुमने क्या कुछ नशा पिया है? चंडू पिया है या ताड़ी? राजपूत लोग छोड़कर चले गये, यह भी कहीं हो सकता है?

तहव्वर—हो सकता हो या न हो सकता हो, लेकिन हुआ वही है। घोड़ेकी किश्त बाजी मात।

अकबर—कैसे ?

तहव्वर०—शाहजादा साहब, राजपूतोंको किसीने यकीन करा दिया है कि आप बादशाहसे मिल गये हैं ।

अकबर—अरे बादशाह कौन है और शाहजादा कौन है ?—ए ! तुमने आकर सब मिट्टी कर दिया !

तहव्वर०—बाहर आकर तो देखिए—एक भी राजपूत नहीं है, सब मिट्टी हो गया ।

अकबर—कहते क्या हो !—और हमारी फौज ? (बाजा बजानेवालोंसे) अरे, चुप रहो ।

तहव्वर०—बादशाहसे मिल गई है ।

अकबर—दगा ! दगा ! तहव्वरखाँ, यह तुम्हारी ही जालसाजी है ।

तहव्वर०—शाहजादा साहब, आप शराब बहुत पी गये हैं। मेरी जालसाजी है ? पराये असगुनके लिए अपनी नाक कटाना ? मेरी गर्दन तो पहले मारी जायगी !—बस अब बाजी सँभालिए ! घोड़ेकी किश्त बाजी मात होती है !

अकबर—मैं समझ गया, यह तुम्हारा ही फरेब है ।—पकड़ो, ए, कोई है ?

तहव्वर०—हाः हाः हाः हाः ! इस वक्त कौन किसे पकड़नेवाला है शाहजादा ! और मुझे मार डालनेसे भी आपकी जान नहीं बच सकती !—एक बात सुनिए ! मैंने एक ढंग सोचा है । बीकानेरके राजाके पाससे मुझे एक खत मिला है कि अगर अब भी बादशाहके सामने हाजिर होकर माफी माँगिएगा तो माफी मिल जायगी । यही कोशिश करके न देखिए । चलिए, बादशाहके पास चलें ।

अकबर—अब्बाके पास ?

नहव्वर०—बुरा क्या है ! मुझे अपनी गर्दनकी कुछ ज्यादह पर्वा तो है नहीं। फिर भी देखूँ, खींच खाँचकर किसी तरह उसे बनाये रख सकता हूँ या नहीं। कोशिश करके देखना बुरा क्या है ! (प्रस्थान।)

अकबर—यह क्या हुआ ! राजपूत लोग तो दगाबाज नहीं होते !—वे भरोसा देकर छोड़ देंगे !—सब मिट्टी कर दिया। (मद्यपान) ए, कौन है !—कुछ पर्वा नहीं—नाचो—गाओ—

(फिर बाजा बजता है।)

आठवाँ दृश्य।



स्थान—अजमेर। औरंगजेबके महलकी बाहरी बैठक।

समय—रातके दस बजे।

[औरंगजेब लेटे हुए हैं। सामने दिलेरखाँ खड़े हैं।]

औरंग०—दिलेरखाँ ! राजपूतोंके पड़ावसे और कुछ खबर पाई है ?

दिलेर०—उनकी तोपोंकी दिल दहलानेवाली आवाजके सिवा और कुछ नहीं सुना। आवाज धीरे धीरे पास आती जाती है और साफ सुन पड़ती है।

औरंग०—उनके इस इरादेका मतलब ?

दिलेर०—मतलब तो कुछ बहुत अच्छा नहीं जान पड़ता।

औरंग०—अकबर ! अकबर ! मुझे तख्तसे उतारकर तुम खुद बादशाह बनाना चाहते हो ? एक दिन तुम ही बादशाह होते !—तुम्हारे लिए इतनी कोशिश, इतनी मेहनत, इतना खर्च, सब बेकार हुआ।—दिलेरखाँ, मैंने यह कभी सोचा भी न था !

दिलेर०—मालूम नहीं, आपने क्यों नहीं सोचा। अकबर तो बादशाही चाल ही चले हैं ! हाँ, यह अभीतक नहीं मालूम हुआ कि वह

मोअज्जम, आजिम और कामबख्शके साथ भी बादशाही बरताव करेंगे या नहीं ।

औरंग०—दिलेरखाँ, मैं यही चाहता हूँ कि जिस खून-खराबेको करके मुझे बादशाह बनना पड़ा है, वह फिर न हो ।

दिलेर० मैं देखता हूँ, हुजूरकी राय इतने ही दिनोंमें बहुत कुछ बदल गई है ।—आहा ! बादशाह सलामतके बुजुर्गवार बादशाह शाहजहाँ अगर इस वक्त जिन्दा होते, तो वे बहुत ही खुश होते ।

औरंग०—जबान सँभालकर बात करो दिलेरखाँ !

दिलेर०—किस लिए हुजूर ? दिलेरखाँ सच बोलनेमें कहीं नहीं हिचकता ! आप क्या यह समझते हैं कि अगर हुजूर अपने बापसे वैसा सलूक न करते, तो भी अकबरको आज यह बात सूझती ?—जहाँपनाह, मैं आपका दोस्त हूँ—मेरी बात मानिए । अब भी अच्छे काम करके पहलेके गुनाहोंको खुदासे माफ करानेकी कोशिश कीजिए । जिजिया बंद कर दीजिए । हिन्दुओंको दोस्त बनाइए । और क्या कहूँ—जनाब, सब फसादोंकी जड़ जो यह काश्मीरी बेगम है उसे दूर कीजिए । नहीं तो अपने कियेका फल भोगनेके लिए तैयार रहिए । (प्रस्थान ।)

औरंग०—(आप-ही-आप) बात तो सच है । सच बात तो कड़वी होती ही है । सच है । जो कर चुका हूँ, वही फिर होते देख पड़ता है !—दारा ! भोले भाले साफ दिलके भाई दारा ! माफ करो । मैंने बड़ा जुल्म—बड़ी बेदर्दी—की है ।—लेकिन जो कुछ किया सो इस्लामके लिए—खुदा गवाह है !

(श्यामसिंहका प्रवेश ।)

औरंग०—क्या खबर है राजासाहब ?

श्याम०—सब ठीक हो गया जहाँपनाह, राजपूतोंने अकबरका साथ छोड़ दिया ।

औरंग०—किस तरह ?

श्याम०—राजपूत लोग अपने घोड़ोंपर चढ़कर जोधपुरकी ओर चल दिये—मैंने अपनी आँखों देखा है । शाहजादा अकबर नाच–गानमें मशगूल थे, उन्हें मालूम भी नहीं हुआ । वे अभीतक बेहोश हैं ।

औरंग०—यह सब कैसे हुआ ?

श्याम०—हुजूर भूल गये ? बन्देकी सलाहसे जहाँपनाहने अकबरके नाम जो खत लिखा था—

औरंग०—कौन खत ?

श्याम०—वही, जिसमें लिखा था कि 'शाहजादे अकबर, तुम्हारी यह राय बहुत ठीक है कि राजपूत लोग जब शाही फौजपर धावा करेंगे तब तुम पीछेसे उनपर धावा कर दोगे ।' वह खत मैंने सेनापति दुर्गादासके भाई समरदासके हाथमें देनेके लिए आदमीसे कह दिया था । राजपूतोंने उस चिट्ठीकी बातपर विश्वास कर लिया है । यह समझकर कि राजपूतोंसे अकबरका मेल करना भी बादशाहकी चाल है; उन्होंने अकबरका साथ छोड़ दिया है ।

औरंग०—सच राजासाहब ? मुझे यह खयाल न था कि राजपूत लोग उस चिट्ठीपर यकीन लावेंगे । दुर्गादासने भी यकीन कर लिया है ?

श्याम०—दुर्गादास नहीं थे । वे राजसिंहकी बीमारीकी खबर पाकर उदयपुर गये हैं ।

औरंग०—और तहव्वरखाँ ?—उसकी क्या खबर है ?

श्याम०—तहव्वरखाँ कैद कर लिया गया है। उसको मैंने चिट्ठी लिखी थी कि ' तुम अब भी अगर बागियोंका साथ छोड़कर अपनी फौज साथ लेकर हुजूरके पास आओगे और माफी माँगोगे, तो वे माफ कर देंगे। ' उसपर विश्वास करके वह मुगलोंके पड़ावमें आया था। शाहजादा आजिमने वैसे ही उसे कैद कर लिया।

औरंग०—राजासाहब, मैं आपके इस कामसे हमेशा आपका एहसानमन्द रहूँगा।

श्याम०—यह हुजूरकी इनायत है।

औरंग०—यह बाहर काहेका शोरगुल हो रहा है?

श्याम०—देखता हूँ। (शंकित भावसे प्रस्थान।)

औरंग०—यह क्या! शोरगुल बढ़ता ही जाता है।—हथियारोंकी झनकार! यह क्या! बन्दूककी आवाज!—दरबान!

(खूनसे तर तहव्वरखाँका प्रवेश।)

औरंग०—तहव्वरखाँ!

तहव्वरखाँ—हाँ जहाँपनाह! (बादशाहकी तरफ पिस्तौल तानता है।)

दिलेरखाँ—(प्रवेश करके) खबरदार!

(तहव्वरखाँ एक बार घूमकर देखता है और फिर बादशाहकी खोपड़ीपर पिस्तौल तानता है। दिलेरखाँ पिस्तौल दागकर तहव्वरखाँको गिरा देता है।)

औरंग०—दगाबाज नमकहरामको सजा मिल गई! नमकहराम कुत्ता!

दिलेर०—मर गया जहाँपनाह, गाली एक भी न सुन सका!

औरंग०—दिलेरखाँ, तुमने आज मेरी जान बचाई।

दिलेर०—जहाँपनाह, इसमें तअज्जुब क्या हुआ! आपकी जान बचानेके लिए ही तो तनख्वाह पाता हूँ।

औरंग०—दिलेरखाँ, तुमको अलग करके इस पठानको मैंने सिपहसालार बनाया था।—उसका यह नतीजा है! मुझे माफ करो दिलेरखाँ।

दिलेर०—जहाँपनाह, मैं आपका एक मामूली खिदमतगार हूँ। मुझसे आप यह क्या कहते हैं!

औरंग०—तुम खिदमतगार नहीं हो। इस दुनियामें तुम्हीं एक मेरे सच्चे दोस्त हो। क्या इनाम चाहते हो दिलेरखाँ?

दिलेर०—मैं जहाँपनाहकी जान बचा सका, यही मेरे लिए सबसे बढ़कर इनाम है।—मैं और कुछ नहीं चाहता।

औरंग०—दिलेरखाँ, तुम बड़े ऊँचे खयालके आदमी हो।

नवाँ दृश्य।



स्थान—राजपूतोंका पड़ाव।

समय—सन्ध्याकाल।

[दुर्गादास और राजपूत सरदार बैठे हैं।]

दुर्गादास—विजयसिंह, अबकी सचमुच हमने धोखा खाया।

समरदास—तुमने इतने दिनोंतक मुगलोंको पहचाना नहीं दुर्गादास!

विजयसिंह—मुझे खयाल न था कि अकबर ऐसा दगाबाज निकलेगा।

मुकुन्दसिंह—देखनेमें बहुत ही सीधा जान पड़ता था।

गोपीनाथ—वह है तो बिलकुल ही निकम्मा। चौबीस घंटे गाने-बजानेमें मगन रहता है।—मगर ऐसा आदमी तो कपटी नहीं होता।

समर०— गोपीनाथ, मुगलके बच्चेके लिए सब संभव है।— मैं पानीका विश्वास कर सकता हूँ, गढ़का विश्वास कर सकता हूँ, सर्पका विश्वास कर सकता हूँ, मगर मुगलके बच्चेका विश्वास नहीं कर सकता। कपट उसकी जातिका धर्म है, वह क्या करे।

गोपी०—सेनापति, राणा राजसिंहकी मृत्यु कैसे हुई?

दुर्गा०—सो तो ठीक मालूम नहीं हुआ, कुमार भीमसिंहकी मृत्युका संवाद सुनकर वे मूर्च्छित हुए थे, फिर होश नहीं आया।

(दरबानका प्रवेश।)

दरबान—(प्रणाम करके) स्वामी, शाहजादा अकबर परिवार-सहित द्वारपर खड़े हैं।

विजय०—अकबर?

दुर्गा०—परिवार-सहित?

समर०—सावधान! इसमें भी कुछ चाल है। भीतर न आने देना।

दुर्गा०—नहीं, उनकी सुन तो लो। दोस्तके साथ एक आध दफा मुलाकात न भी की जाय तो कुछ हर्ज नहीं भैया, मगर शत्रुको यों न लौटाना चाहिए। (दरबानसे) उनको आदरके साथ भीतर ले आओ। (दरबानका प्रस्थान।)

मुकुन्द०—इसके माने?

समर०—फिर कुछ धोखा देने आया होगा—सावधान दुर्गादास!

गोपी०—इस युद्धमें क्या विस्मयका अन्त न होगा!

दुर्गा०—शाहजादेका सब लोग यथोचित सम्मान करना।

[सपरिवार अकबरका प्रवेश।]

(सब लोग उठ खड़े होते हैं।)

दुर्गा०—आज हमें यह इज्जत देनेका क्या कारण है शाहजादा साहब?

अकबर—राठौर सरदार, मुझे धोखा दिया गया।

समर०—आपको धोखा दिया गया? या हमने धोखा खाया?

अकबर—शायद दोनोंने धोखा खाया। राजपूतोंने मेरा मददगार होना मंजूर करके, मुझे बादशाह बनाकर, जब मैं बेखटके होकर बादशाहका बागी बन बैठा, तब मेरा साथ छोड़ दिया।

समर०—झूठ बात है।

रजिया—सिपाही,—अब्बाकी बेइज्जती न करना! (आँखोंमें आँसू भरे हुए दीन दृष्टिसे दुर्गादासकी ओर देखती है।)

दुर्गा०—जरा चुप रहो भैया।—शाहजादा साहब, राजपूतोंने बिना किसी कारणके आपका साथ नहीं छोड़ा। राजपूत लोग विश्वासघातक नहीं होते। बादशाहकी यह चिट्ठी पढ़कर इन लोगोंने समझा कि राजपूतोंसे मिलकर आप धोखा देना चाहते हैं।—पढ़िए, यह चिट्ठी। (चिट्ठी देना)

अकबर—(पत्र पढ़कर) दुर्गादास, सब झूठ है।

समर०—क्या झूठ है?—ये बादशाहके दस्तखत नहीं हैं?

अकबर—दस्तखत तो बादशाहके ही हैं। लेकिन इस खतमें जो कुछ लिखा है वह सरासर झूठ है। हम लोगोंमें फूट डालनेके इरादेसे यह खत लिखा गया है। यह खत मेरे नाम लिखकर राजपूतोंके पास भेजा गया है। नहीं तो यह खत मेरे पास न पहुँचकर राजपूतोंके सिपहसालारको क्यों मिलता? मुगल-सिपाही क्या राजपूत और मुगलको पहचानता न होगा? अगर ऐसा ही होता, इस खतकी बात सच होती, तो ऐसे कामकी खबर इस तरह तुम लोगोंको न मिल जाती।

दुर्गा०—(सबकी तरफ देखकर) क्या कहते हो?

समर०—हम यह कुछ सुनना नहीं चाहते । हम लोगोंको मुगलोंने बराबर धोखा दिया है । हम उन मुगलोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहते ।

अकबर—राठौर सरदार, मुझे किसी तरफका न रखकर आफतमें न डालना । मैं तुमसे पनाह चाहता हूँ ।

दुर्गा०—सब सामन्तोंकी क्या सलाह है ?

विजय०—मैं तो कहता हूँ कि मुगलोंसे कुछ भी सम्बन्ध न रखना ही अच्छा है ।

मुकुन्द०—मेरी भी यही राय है । मुगलोंसे हम एक ही जगह —सिर्फ युद्धके मैदानमें—मिलना चाहते हैं ।

जगत्०—मैं भी कहता हूँ । हम मुगलोंसे मित्रता नहीं चाहते । हम युद्ध करना जानते हैं—युद्ध ही करेंगे ।

दुर्जन०—सेनापति, मेरी भी यही सलाह है । शाहजादा मुगलोंके पड़ावको लौट जायँ—अपने पितासे जाकर क्षमाकी प्रार्थना करें । बादशाह अवश्य अपने लड़केको क्षमा कर देंगे ।

अकबर—तो शायद आप लोग उनको नहीं पहचानते ।

समर०—खूब पहचानते हैं । और अधिक पहचाननेकी जरूरत नहीं है ।—लौट जाइए शाहजादा साहब !

अकबर—(दुर्गादाससे) राठौर सरदार, मैं तुमसे पनाह माँगता हूँ ।

दुर्गा०—सामन्तगण, क्षत्रियका धर्म है आश्रय देना ।

समर०—साँपको दूध पिलाना क्षत्रियोंका धर्म नहीं हो सकता ।

अकबर—मुझपर भरोसा कीजिए—मेरे साथ चालाकी की गई है ।

दुर्जन०—संभव है। तो भी तुम्हारे बीचमें न पड़ना ही हम अच्छा समझते हैं।

अकबर—यही क्या सब सभाकी राय है। राजपूत आज अपना फर्ज भूलकर पनाह देनेसे मुँह मोड़ते हैं ?

(सब चुपचाप हो रहते हैं।)

दुर्गा०—शरणागतकी रक्षाके लिए कोई राजी नहीं है ?

सब—हम लोग शत्रुको आश्रय न देंगे।

अकबर—सरदार, मैं बादशाहका लड़का हूँ। मुझे धोखा दिया गया है, मैं मुसीबतमें पड़ा हूँ। मैं अपने लड़की-लड़कोंके साथ घुटने टेककर तुमसे पनाह माँगता हूँ। (पुत्र और कन्यासे) घुटने टेको शाहजादे ! घुटने टेको शाहजादी !

रजिया—(घुटने टेककर, आँखोंमें आँसू भरकर) दुर्गादास, अब्बाको बचाओ।

दुर्गा०—किसीकी राय नहीं है ?

सब—हममेंसे किसीकी राय नहीं है।

दुर्गा०—अच्छी बात है। तो अकेला मैं राजी हूँ।—सामन्तगण, दुर्गादास अपनेको क्षत्रिय समझता और बतलाता है। आश्रय माँगनेवाले शरणागतको वह कभी विमुख नहीं कर सकता। सामन्तगण, तुम्हारा जी चाहे मुझे छोड़ दो। मैं आश्रितको नहीं छोड़ सकता। —चलिए, आइए शाहजादा साहब, जबतक दुर्गादासके प्राण हैं तबतक किसीकी मजाल नहीं कि आपका बाल बाँका कर सके।

(पर्दा गिरता है।)

चौथा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—दिल्ली। दरबारका कमरा।

समय—प्रातःकाल।

[शाहजादा मौजम और दिलेरखाँ दोनों खड़े हैं।]

दिलेर०—दुर्गादास अकबरको लेकर दक्खिनको चले गये।

मौजम—हाँ दिलेरखाँ, अकबरको पनाह देनेके सबब सब राजपूत-सरदारोंने उसे छोड़ दिया है। अब दक्खिनमें संभाजीके पास जानेके सिवा उसके लिए कोई चारा न था।

दिलेर०—शाबास दुर्गादास!

मौजम—सिर्फ पांच सौ राजपूत, जो उसके खास जाँ-निसार साथी थे, उसके साथ गये हैं। मैंने फौज लेकर उसे घेर लिया था। एक दिन रातको दुर्गादास अपने पाँच सौ साथियोंको साथ लिये मुगलोंकी फौजके बीचसे चीर-फाड़कर निकल गया।—पीछेसे सुना कि वह दक्खिनको गया है।

दिलेर०—शाबास दुर्गादास, शाबाश!

मौजम—बादशाहके हुक्मसे शाहजादे अकबरको पकड़ा देनेके लिए मैंने रिश्वतके तौर पर ४०,००० मोहरें दुर्गादासके पास भेजी थीं। दुर्गादासने वे मोहरें अकबरको दे दीं। खुद एक कौड़ी भी नहीं ली।

दिलेर०—वाह वाह! शाबास दुर्गादास!

मौजम—अब मारवाड़की फौजका सिपहसालार कौन है ?

दिलेर०—दुर्गादासके भाई समरदास।

मौजम—अकबरके लड़की-लड़के कहाँ हैं ?

दिलेर०—उन्हींके पास हैं। अकबरकी बेगम मर गई। शाहजादी रजिया समरदासके पास है।

[आजिमका प्रवेश।]

आजिम—दिलेरखाँ, बादशाह सलामत चाहते हैं कि राजपूतोंसे सुलह कर ली जाय। यही बात तुमसे कहनेके लिए बादशाहने मुझे भेजा है।

दिलेर०—क्या ! सुलह ! सच शाहजादा साहब ? बादशाह क्या सचमुच सुलह चाहते हैं ?

आजिम—हाँ दिलेरखाँ !

दिलेर०—खुदा उनका भला करे।—सुलहका पैगाम कौन भेजेगा ? मैं या खुद बादशाह सलामत ?

आजिम—राजपूत।

दिलेर०—राजपूत भेजेंगे ? वे ही जीते और वे ही सुलहका पैगाम भेजेंगे ?

आजिम—जहाँपनाह कहते हैं कि हम सुलहका पैगाम नहीं भेज सकते। वैसा करनेमें हमारी बेइज्जती होगी।

दिलेर०—इसीसे उनकी इज्जत बचानेके लिए जीते हुए राजपूत सुलहका पैगाम लेकर आवेंगे !—यह बात किसने बादशाहसे कही है ?

आजिम—बीकानेरके राजा श्यामसिंहने। उन्होंने कहा है कि बादशाही इज्जतका ख्याल रखकर वे सुलह करा देंगे।

दिलेर०—समझा । तो यह भी बादशाहकी पहलेकी ऐसी दगा-बाजीकी सुलह है ।

आजिम—दिलेरखाँ, जबान सँभालकर बात करो ।

दिलेर०—(स्वगत) हूँ ! साँपसे बढ़कर उसका बच्चा जहरीला होता है । (प्रकट) जाइए शाहजादा साहब, बादशाहसे जाकर कहिए कि अगर बादशाह सचमुच राजपूतोंसे ईमानदारीकी सुलह करना चाहते हैं, तो मैं ऐसी शर्त्तसे सुलह करा दूँगा कि बादशाहकी बिल्कुल बेइज्जती न होने पावेगी ।—और अगर इस सुलहमें कोई चाल है तो उनसे कहना कि मैं शरीक नहीं हूँ । (प्रस्थान ।)

मौजम—अब्बाजान एकाएक सुलह क्यों करना चाहते हैं आजिम ?

आजिम—वे इस वक्त दक्खिन जाना चाहते हैं । इसके लिए पचास हजार तंबू बनवाये गये हैं ।

मौजम—क्या अकबरको पकड़नेके लिए वे दक्खिन जाना चाहते हैं ?

आजिम—यही जान पड़ता है ।—मौजम, तुम अकबरको पकड़ कर नहीं ला सके—इससे बादशाह सलामत तुमपर बहुत नाराज हैं । यहाँ तक कि उन्हें शक है कि तुमने जान बूझकर अकबरको निकल जाने दिया है ।

मौजम—यह बात बिल्कुल झूठ नहीं है । आजिम, बादशाहके गुस्सेकी आगमें अपने भोलेभाले कमजोर भाईको डाल देना मैंने मुनासिब नहीं समझा । वह दुर्गादासके पास मजेमें है ।

आजिम—तो तुमने मौजम, जानबूझकर बादशाहकी मर्जीके खिलाफ यह काम किया है ?

मौजम—हाँ आजिम ! बाप बाप है, लेकिन भाई भी भाई है ।

(प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—जोधपुरका महल ।

सयय—प्रातःकाल ।

[रेशमी कपड़े पहने रानी महामाया अकेली खड़ी है ।]

रानी—मेरा काम समाप्त हो गया । मेरे परलोकवासी स्वामीका राज्य शत्रुके हाथसे निकल आया । मारवाड़से मुगल निकल गये । बस, अब काम पूरा हो गया । अब मैं सती-धर्मका पालन करूँगी । आज स्वामीके पास यात्रा करूँगी । आज जलती हुई चितामें इस शरीरको छोड़ूँगी । आज जलकर सब कष्टोंसे छुटकारा पाऊँगी । (घुटने टेककर) प्रभो ! स्वामिन् ! प्राणवल्लभ ! एक दिन जब तुम युद्धमें हारकर आये थे, तब मैंने स्वाभिमानके मारे गढ़का फाटक बन्द कराकर युद्ध-भूमिमें तुम्हारी मृत्युकी कामना की थी । देखो नाथ ! हम जैसे देशके लिए तुमसे मरनेको कहती हैं वैसे ही हम भी तुम्हारे लिए हँसते हँसते मर सकती हैं ।

("बन ठन कहाँ चली–बन ठन०" इत्यादि गाते हुए रजियाका प्रवेश ।)

रजिया—रानी, आप यह क्या कर रही हैं ?

रानी—मैं जाती हूँ रजिया ।

रजिया—यह क्या ? कहाँ ?

रानी—(ऊपर उँगलीका इशारा करके) वहाँ—जहाँ मेरे स्वामी इतने दिनोंसे मेरी राह देख रहे हैं ।

रजिया-- आपके शौहर राह देख रहे हैं ?—कहाँ ? कहाँ ? मुझे तो नहीं देख पड़ते।--

रानी—और कोई नहीं देख सकता शाहजादी !

रजिया-- आप क्या देख पाती हैं ?

रानी—देख क्यों नहीं पाती रजिया !

रजिया--मुझे यकीन नहीं आता। मुझे नहीं देख पड़ते, और आप देखती हैं ?---यह हो ही नहीं सकता।—

रानी---भोलीभाली लड़की, औरंगजेबके वंशमें तेरा जन्म हुआ है !

रजिया--अच्छा कुँअरको आप किसके पास छोड़े जाती हैं ?

रानी---तुम लोगोंके पास।

रजिया---भई मुझसे उनकी देख-रेख न होगी। आप तो अपने लड़केको छोड़ जायँगी और मैं उन्हें देखूँगी ! कभी न देखूँगी।

रानी-- मुझे तो जाना ही होगा रजिया, मेरे स्वामी बुला रहे हैं।

रजिया---आप अपने शौहरको लड़केसे बड़ा समझती हैं ?

रानी—हिन्दुओंकी औरतोंका यही धर्म है—शाहजादी, स्वामी ही सती स्त्रीका सर्वस्व है—पति ही पतिव्रताके लिए सब कुछ है। अभीतक काम बाकी था, इसीसे उनको छोड़कर यहाँ थी। अब मेरा काम पूरा हो गया है। मैं उनके पास जाऊँगी।

रजिया—काम पूरा हो गया, इसके क्या माने ? काम कहीं खतम होता है ? नहीं, मैं तो देखती हूँ कि आप किसी तरह नहीं जा सकतीं।

रानी—नहीं बेटी, ऐसा न कहो।

[समरदासका प्रवेश।]

रजिया—यह क्या बात है ! यह भी कहीं हो सकता है ?—यह तो हो ही नहीं सकता।—ये देखो सरदार आ गये ! (समरदाससे)

आप ही कहिए, यह कहीं हो सकता है?—क्यों सरदार साहब ?

रानी—क्यों नहीं हो सकता रजिया ?

रजिया—क्यों नहीं हो सकता, सो तो मैं नहीं जानती। लेकिन यह अच्छी तरह समझती हूँ कि यह हो नहीं सकता।—सरदार साहब, आप ही कहिए, यह हो सकता है?

रानी—अवश्य हो सकता है बेटी, मुझे सती होने दो—मैं जाऊँगी। अजित कहाँ है समरदास?

समर०—भीतर है। रो रहा है!—मैं कुअँरको समझा नहीं सका रानीजी, और क्या कहकर समझाता ?

रानी—वह क्या कहता है?

समर०—कुँअर कहते हैं,—'मैं माको जाने न दूँगा।'

रानी—उसे यहाँ ले आओ समरदास!

(समरदासका प्रस्थान।)

रानी—भगवन्!—सतीधर्म-पालन करनेके लिए मेरे हृदयमें बल दो। सबसे कठिन काम यही है—लड़केको छोड़ जाना (हृदयपर हाथ रखकर) भगवन्!—

[अजितको लेकर समरसिंहका प्रवेश। साथ साथ कासिम भी आता है।]

रानी—कुँअर! बेटा अजित!—मेरे बच्चे!—मैं जाती हूँ—मुझे जाने दो लाल!

अजित०—मा! तुम जाती हो—मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाती हो मा?

रानी—जहाँ सब लोग एक दिन जाते हैं।—कोई दो दिन आगे जाता है और कोई दो दिन पीछे।—अजित, मुझे जाने दो बेटा!

अजित०—जाने दूँ! (कम्पित स्वरसे) मा!—

रानी—किसीकी मा सदा नहीं रहती अजित !

अजित०—किसीकी मा अपनी इच्छासे इस तरह सन्तानको छोड़कर नहीं जाती मा !

रानी—मगर यह तो सती स्त्रीका धर्म है अजित !

रजिया—लेकिन माका क्या यही धरम है रानी ?

रानी—छीः अजित, रोते क्यों हो !—मुझे जाना ही होगा ।

अजित०—अगर जाना ही होगा तो जाओ । जाना चाहती हो, मुझे छोड़कर जा सको—जाओ, मैं न रोकूँगा ।

रानी—प्रसन्न होकर मुझसे जानेके लिए कहो बेटा !

अजित—मैं जानेके लिए नहीं कहूँगा ।

रानी—समरदास, कुँअरको समझाओ ।

समर०—अजित, तुम्हारी माका यही सती-धर्म है । इस धर्मके पालनमें बाधा डालना तुम्हें उचित नहीं ।

रजिया—धरम ! सरदार,—लड़की-लड़के छोड़कर, उन्हें दूसरोंको सौंपकर, मर जाना धरम है ?—इसे तुम धरम कहते हो ?—

समर०—शाहजादी, धर्मका विचार करना हमारा काम नहीं है । जो सनातन धर्म है, उसका पालन करना ही हमारा काम है । उसके आगे हमारा सिर झुकाना ही सोहता है । जो लोग इसे धर्म ठहरा गये हैं, वे हमसे सब बातोंमें बहुत बड़े थे ।

अजित०—तो तुम मा, हमको छोड़ जाओगी—(कम्पित स्वरसे) यह तुम्हें अच्छा लगता है ? यही ठीक जान पड़ता है ?—कष्ट नहीं माल्रूम होता ?

समर०—कष्ट नहीं माल्रूम होता ! (कम्पित स्वरसे) अजित ! यह क्या तुम्हारी ही मा हैं, मेरी नहीं हैं ! सारे मारवाड़की मा नहीं हैं ?—

तो भी इन्हें जाने देना होगा अजित, (फिर कुछ प्रकृतिस्थ होकर) यह भी देव-प्रतिमाको विसर्जन करना है! लड़कीको ससुरालके लिए बिदा करना है!—कष्ट होनेके कारण नियमको कोई नहीं लाँघ सकता।

अजित०—मैं यह कुछ नहीं समझता। मैं अपनी माको न छोड़ूँगा। (रोता है।)

(निरुपाय होकर रानी फिर समरदासकी तरफ देखती है।)

समर०—अजित, तुम क्षत्रियके बच्चे हो—तुम्हारा यों रोना-यों बेजा हठ करना—अच्छा नहीं मालूम होता।—तुम्हारी ही अवस्थामें वीरवर बादलने चित्तौरके लिए, कर्त्तव्यके लिए प्राणपणसे युद्ध किया था और तुम बच्चोंकी तरह, औरतोंकी तरह, रोने बैठे हो! छि: !—माको प्रणाम करो अजित।—

[अजित चुपचाप प्रणाम करता है।]

रजिया—हाय! बेचारे कुँअर!

समर०—(कुँअरसे) अब जाओ।

रानी—कासिम, इस अपने सर्वस्व पुत्रको तुम्हें सौंपे जाती हूँ।

(कासिमके साथ अजितका चुपचाप प्रस्थान।)

रजिया—ऊँहूँ। यह ठीक नहीं होता। किस जगह भूल है, सो मेरी समझमें नहीं आता, लेकिन यह साफ जान पड़ता है कि यह ठीक नहीं हो रहा है। जाऊँ, बेचारे कुँअरको समझाऊँ। (प्रस्थान।)

रानी—भगवन्, भगवन्! इसीके लिए क्या तुमने स्त्री-जातिको पैदा किया था? स्त्रीके हृदयमें स्नेह भर दिया था—उसे पीड़ा पहुँचानेके लिए? स्त्रीके हृदयमें ममता दी थी—उसे जलानेके लिए? (सिर झुकाकर) अच्छा बिदा होती हूँ समरदास,—क्यों, चुप क्यों हो?

समर० --जाओ माता, हिन्दू होकर किस तरह कहूँ कि तुम सती न होओ । जाओ माता! प्रणाम ।

रानी—दुर्गादाससे मेरा आशिर्वाद कहना ।

(समरदास सिर झुकाकर धीरे धीरे दूसरी ओरसे जाते हैं ।)

[पर्दा बदलता है ।]

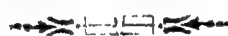
[चिता जल रही है । रानी और स्त्रियाँ खडी हैं । स्त्रियोंका गान ।]

गीत ।

सती, पतिके निकट जाओ, पतिव्रत-पुण्य-फल पाओ ।
बिना पतिके सतीकी और गति है कौन ?-बतलाओ ॥
जगतके शोक-दुख जल राख होवें साथ ही तनके ।
जननि, तुम लोक अक्षय स्वर्गको पाओ, वहां जाओ ॥
उधर देखो, गगनमें देवता हैं फूल बरसाते ।
सुनो, जयभेरियाँ वे बज रही हैं; देवि तुम जाओ ॥

(रानी चितामें कूद पड़ती है । स्त्रियां गाती हुई जाती हैं ।)

तीसरा दृश्य ।



स्थान—अजमेर । शाही महलकी बैठक ।

समय—प्रातःकाल ।

(औरंगजेब और दिलेरखाँ ।)

दिलेर० --जहाँपनाह, राजपूतोंसे सुलह हो गई । राठौर समरदास इस सुलहके लिए किसी तरह राजी नहीं होते थे । उन्होंने कहा—इस सुलहमें चाल है ।

औरंग०—फिर किस तरह उसे राजी किया दिलेरखाँ ?

दिलेर०—मैंने उनके यकीनके लिए अपने दोनों लड़कोंको वहीं छोड़ आनेके लिए कहा, तब वे राजी हुए ।

औरंग०—किस शर्तपर सुलह हुई ?

दिलेर०—इस शर्तपर कि चित्तौर और उसमें लगनेवाले और शहर वगैरह राजपूतोंको फेर दिये जायँगे; हिन्दुओंके मन्दिर वगैरह-पर आइन्दा कुछ जुल्म न होगा। जोधपुरके राजाको उनका राज्य फेर देना होगा। और राणा भी पहलेकी तरह अपनी फौजसे हमेशा बादशाहकी मदद करेंगे।

औरंग०—राणा अपनी फौजसे हमारी मदद करेंगे ? राणा जय-सिंहने यह मंजूर कर लिया है ?

दिलेर०—पूरी तौरसे मंजूर कर लिया है। इस सुलहको सबसे ज्यादा उन्होंने ही पसंद किया है। समरदास पहले उन्हें 'कायर' 'आराम-तलब' वगैरह कहकर सभासे उठकर चले गये। राणा सिर झुकाकर चुप रह गये।

औरंग०—फिर ?

दिलेर०—फिर एक दफा सब राजपूत जमा हुए। फिरसे नया सुलहनामा लिखा गया। समरदास बोल उठे कि 'मुगलोंका एतबार क्या ?' तब मैं अपने दोनों लड़कोंको वहाँ छोड़ आनेके लिए तैयार हो गया। इसपर भी बड़ी मुश्किलसे समरदास राजी हुए।

औरंग०—तुम अपने दोनों लड़के वहाँ छोड़ आये हो ?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह !

औरंग०—दिलेरखाँ, तुम बहुत बड़े आदमी हो।—मैं इस सुलहकी शर्तें निबाहूँगा।

दिलेर०—हुजूरका एकबाल बलन्द हो।—

(श्यामसिंहका प्रवेश।)

श्याम०—राजाधिराज बादशाह औरंगजेबकी जय हो !

औरंग०—क्या खबर है राजासाहब !

श्याम०—सब काम बन गया खुदावन्द !—इस तरह काम बन-जानेकी आशा न थी ।—अब बादशाहका काँटा जाता रहा ।

औरंग०—कैसे ?

श्याम०—सुलहके बाद कुछ ब्राह्मणोंके द्वारा बिगड़े-दिल समर-दासको मैंने मरवा डाला ।

दिलेर०—क्या उनको मरवा डाला राजा साहब ? सच ?

श्याम०—हाँ सच !

दिलेर०—तुमने उनको मरवा डाला ?

श्याम०—हाँ दिलेरखाँ !

दिलेर०—हुजूर माफ करें (श्यामसिंहकी गर्दन पकड़कर) पाजी ! बुजदिल ! तू राजपूत है ? आज मैं तुझे जीता न छोड़ूँगा ।

श्याम०—(कातर भावसे औरंगजेबकी तरफ देखकर) जहाँपनाह !

औरंग०—छोड़ दो दिलेरखाँ—यह बहुत ही मामूली आदमी है । मच्छड़ मारकर हाथ काले न करो दिलेरखाँ !

दिलेर०—सच है । तुझे मारकर ये हाथ काले न करूँगा । तू दोजखके कीड़ोंसे भी गया गुजरा है ! तुझे देखनेसे भी गुनाह होता है !—तुझे हाथसे छूना भी बड़ा भारी गुनाह है—दूर हो !—

(श्यामसिंहको धक्का देकर दूर कर देना ।)

दिलेर०—हाथ धो आऊँ हुजूर ।　　(प्रस्थान ।)

औरंग०—दिलेरखाँ, मेरे लिए तुमको दोनों लड़कोंसे हाथ धोना पड़ा । लेकिन मेरा इरादा अच्छा था । इसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ दोस्त । यह खून मेरी रायसे नहीं हुआ है । इतनी ओछी तबी-यतका आदमी मैं नहीं हूँ ।

(मौजमका प्रवेश।)

मौजम—हुजूरने बुलाया है?

औरंग०—हाँ मौजम,—दक्खिन जानेके लिए सारी मुगलोंकी फौजको हुक्म दो। तुम भी तैयार रहो।

मौजम—जो हुक्म। (दोनोंका प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान—दक्खिन पालीगढका किला।

समय—रात्रि।

(मराठोंके राजा संभाजी, दुर्गादास और अकबर बैठे हैं।)

संभाजी—दुर्गादास, तुमने बड़ा साहसका काम किया। सिर्फ ५०० घुड़सवार लेकर जोधपुरसे पालीगढ़ चले आये!

अकबर—हमको आये बहुत दिन हुए। इतने दिनोंतक महाराजके दर्शन ही नहीं मिले।

संभाजी—शाहजादा साहब, मैं राज्यके एक खास काममें लगा हुआ था। इसीसे देर हो गई। माफ कीजिएगा शाहजादा साहब, आपकी मेहमानदारीमें—आदर-सत्कारमें—तो कुछ कसर नहीं हुई?

अकबर—नहीं। महाराजके सरदारोंने बड़ी इज्जतसे मुझको रक्खा है। मेहमानदारीमें कुछ कसर नहीं हुई।

संभाजी—शाहजादा साहब, आपकी बेगम और बच्चे कहाँ हैं?

दुर्गा०—मारवाड़की रानीके पास उन्हें छोड़ आना पड़ा है। उनपर बादशाहकी नाराजगी नहीं है। केवल शाहजादाको आप आश्रय दें।

संभाजी—आप अपने लिए कुछ चिन्ता न करें शाहजादा साहब, आप अपनेको इस समय लोहेके किलेमें समझिए ।—दुर्गादास, तुमने इनको बादशाह बनाया था ?

दुर्गा०—हाँ बनाया था महाराज ।

संभाजी—बस, अकबरशाह, हम मराठे भी आजसे आपको बादशाह मानते हैं ।

अकबर—मेरा भाई मौजम बहुतसी फौज लेकर मुझे पकड़नेके लिए आ रहा है ।

दुर्गा०—शाहजादा आजिम भी सेना लेकर अहमदनगरमें आगये हैं।

संभाजी—कुछ डर नहीं है शाहजादा साहब, मैं खुद बरहमपुरमें जाकर आपको बादशाह बनाऊँगा ।

(संभाजीके दो सेनापति सन्तूजी और केशवका प्रवेश ।)

सन्तूजी—जिंजिरागढ़ जीत लिया गया महाराज !

संभाजी—अच्छी बात है, मैं बहुत खुश हुआ ।

केशव—महाराज, कर्नल केरी और फर्डीनेंड मुलाकात करना चाहते हैं । क्या उन्हें यहाँ ले आऊँ ?

संभाजी—ले आओ—हर्ज क्या है !

[सन्तूजी और केशवका प्रस्थान ।]

संभाजी—दमभरकी फुरसत नहीं है शाहजादा साहब—राजाके पीछे राजकाज लगा ही रहता है । महीने भरसे अधिक हुआ, अँगरेजोंने यह जिंजिराका किला तैयार किया था । वह मिट्टीमें मिला दिया गया । देखा !—दुर्गादास, राजपूत लोग युद्ध करना जानते हैं ?

दुर्गा०—राजपूत लोग देशके लिये प्राण देना जानते हैं ।

संभाजी—मगर राजपूत जाति तो बार बार यवनोंके द्वारा पद-दलित हुई है।

दुर्गा०—सच है। मगर सोचिए तो महाराज, आर्यावर्तमें राजस्थान एक रजकणके बराबर है। तब भी आर्यावर्त्तभरमें केवल राजपूत ही तीन सौ वर्षसे सिर उठाये हुए हैं।

संभाजी—और मराठे लोग केवल मस्तक ऊँचा किये ही नहीं है—वे मस्तक बना रहे हैं—किसकी अधिक शक्ति है दुर्गादास ?

दुर्गा०—मैं यह नहीं कहता कि मराठोंमें बल नहीं हैं। मेरे कहनेका मतलब यह है कि राजपूत लोग भी शक्तिशाली है—उनकी भी कलाइयोंमें बल है।—महाराज, मेरे यहाँ आनेका प्रधान उद्देश्य है शाहजादा अकबरको सुरक्षित करना।

संभाजी—अच्छा आये हो तो देखे जाओ, मराठे किस तरह युद्ध करते हैं। देशमें जाकर लोगोंसे कहने योग्य एक बात मालूम हो जायगी।

दुर्गा०—(स्वगत) इतना घमंड है, तो शीघ्र ही पतन होगा।

(केरी और फर्डीनेंडके साथ केशवका प्रवेश।)

संभाजी—केरी साहब, तुमने जिंजिरागढकी हालत देखी ?

केरी—हाँ राजा साहब !

संभाजी—यही अवस्था तुम्हारे बंबईके उपनिवेशकी होगी, अगर मेरे दुश्मनोंके जहाजोंको बन्दरगाहमें ठहरने दोगे ! और एलीफेण्टामें मराठोंका किला बनेगा।

केरी—राजा साहब—

संभाजी—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। जाओ—और पुर्तगीज सरदार साहब, तुमने मेरा मना किया नहीं माना। तुम्हारे अंकीद्वीपपर दखल करनेके लिए मैंने जहाज भेजे हैं। देखता हूँ तुम्हारा

गोआका व्यापार कैसे चलता है ! अब भी होशमें आजाओ—जाओ ।

(कोर्निश करके केरी और फर्डीनेंडका प्रस्थान ।)

संभाजी—इन फिरंगियोंको मैं कुछ डरता हूँ दुर्गादास,—काबलेस खाँ ।—

नेपथ्यमें—हुजूर ?—

संभाजी—शराब और औरत—

नेपथ्यमें—जो हुक्म महाराज !

संभाजी—ये फिरंगी खूब बन्दूकका निशाना लगाते हैं ।—और कभी इनकी फौज सरदारके मरनेसे भाग खड़ी नहीं होती । सबकी एक ही चाल, एक ही निशाना, एक ही ओर मुँह रहता है ।

(शराबकी बोतल लिये काबलेसखाँका प्रवेश ।)

संभाजी—(बोतलसे प्यालेमें शराब ढालकर) लो दुर्गादास !

दुर्गा०—मुझे तो माफ कीजिए महाराज !

संभाजी—यह क्या कहते हो ! शराब पीनेसे इन्कार ?—'गर यार मय पिलाये तो फिर क्यों न पीजिए । जाहिद नहीं मैं शेख नहीं कुछ वली नहीं । ' शाहजादा साहब—

अकबर—शराब पीना तो कुछ बुरा नहीं है ।—

संभाजी—बेशक तुम बादशाही तबीयतके आदमी हो । मैं तुमको जरूर बादशाह बनाऊँगा ।

काबलेसखाँ—हुजूर औरत ?

संभाजी—हाँ—अभी यहीं—

दुर्गा०—तो मैं अब जाता हूँ । जरा विश्राम करूँगा ।

संभाजी—क्यों, तुम्हारा सतीत्व नष्ट होजायगा ?—अच्छा जाओ !—

दुर्गादास—(उठते उठते,मनमें) इतनी ओछी तबीयतका आदमी है !

(नाचनेवालियोंका प्रवेश।)

संभाजी—बस, गाओ—नाचो। शाहजादा साहब, मुसलमान लोग क्या बड़े ऐयाश होते हैं ?

अकबर—(शराब पीते पीते) हाँ। लेकिन शराब पीना दीन-इस्लाममें मना है।

संभाजी—हाँ ! तो वह धर्म मेरे लिए नहीं है।—शराब भी कैसी चीज है ! पीते ही आँखोंमें लाली, तबियतमें बहाली, तमाम दुनिया रंजसे खाली—हाः हाः हाः ! दुनियामें दो ही तो चीजें हैं—शराब और औरत—गाओ।

दुर्गा०—(जाते जाते अपने मनमें) यही शराब और औरत तुम्हारा सर्वनाश करेगी संभाजी ! (प्रस्थान।)

संभाजी—देखा अकबर, दुर्गादास कैसी नजरसे मेरी तरफ देखता चला गया ! ढोंग दिखाता है।

अकबर—अच्छा तुम लोग गाओ।

संभाजी—हाँ गाओ—नाचो—किस जिन्दगीके लिए लड़ाई लड़ें शाहजादा साहब, आरामसे जिन्दगीके मजे उड़ाओ—गाओ। एक शाहजादेके आनेकी खुशीका गीत गाओ। ये भारतसम्राट् औरंगजेबके लड़के अकबर हैं।—

(नाचनेवालियाँ नाचती और गाती हैं।)

गीत।

मित्र, दयाकर जो तुम आये हो मन-भाये कुटी हमारी।
जान न पड़े तुम्हें क्या देकर करूँ प्रसन्न, अहो गुणधारी ! ॥
काहेसे मैं करूँ विभूषित तुमको रत्नोंके अधिकारी।
केवल मित्रपनेके नाते अपना लो बस जान अनारी ॥

क्या इस दम मैं दौड़ तुम्हारे सदय हृदयहीसे लग जाऊँ ? ।
या इन चरणोंके ऊपर ही लोट लोटकर खुशी मनाऊँ ? ।
हँसूँ, मनाऊँ, इन चरणोंपर अथवा आनंदाश्रु गिराऊँ ? ।
समझ न पड़ता, मैं अब कैसे प्रीति हृदयकी आज दिखाऊँ ?॥
आशातीत अतिथि ! जो तुमको आज कुटीमें अपनी पाया ।
राह धूलमें अँधियारीमें, हाथ एक मणि अपने आया ॥
जो आये हो तो मैं अपना हृदयासन सानन्द बिछा दूँ ॥
प्रेमहार प्रिय, गूँथ गलेमें सानुराग रुचिसे पहना दूँ ॥
पड़ा रहूँ दिन-रात तुम्हारे चरणोंमें ही शरण तुम्हारी ।
तुम मेरे प्रियबन्धु तुम्हारे ऊपर तन मन धन सब वारी ॥

पाँचवाँ दृश्य ।



स्थान—राणा जयसिंहका अंत:पुर ।

समय—सायंकाल ।

(जयसिंह और उनकी धाय, दोनों आमने-सामने खड़े हैं ।)

जय०—क्या ! कमला मुझसे कहे बिना चली गई ?

धाय—गई तो गई ! हुआ क्या ? आफत टल गई !

जय०—बड़ी रानी कहाँ है ?

धाय—वह घरकी लक्ष्मी घरमें है ।

जय०—उसे बुलाओ तो । जरूर उससे कुछ झगड़ा हुआ है ।

धाय—नहीं भैया, नहीं, वह तो कुछ बोलती ही नहीं । मिट्टीकी पुतली है । छोटी रानी ही बीच बीचमें उसको बकती झकती है—धमकाती है—बापरे बाप ! जैसे ताड़का राक्षसी बन जाती है ! उस समय छोटी रानीका मुँह मानो आतिशबाजीका अनार बन जाता है

और जब मान करती है तब भारी तौला ! —भैया, मैंने तो ऐसी लुगाई नहीं देखी !

जय०—चुप ! मुँह सँभालकर बात कर !

धाय—अरे बापरे ! तुम तो कुंभकर्ण बन गये ! मुझे खाने आये हो ? क्यों ! डर काहेका है ? तुमपर तो छोटी रानीने जादू कर दिया है। तुम तो राज-पाट सब छोड़कर उसीके नामकी माला जप रहे हो। मगर मैं तो इस घरका अन्न खाकर पली हूँ—बुड्ढी हुई हूँ—मुझसे अन्याय न देखा जायगा।

जय०—देख, मैंने तेरा दूध पिया है, इसीसे तेरी सब बातें सुन लेता हूँ। जा, बड़ी रानीको बुला दे।

धाय—मैं क्यों बुला दूँ ! तुम आप क्यों नहीं उसके पास जाते ? वह कुछ तुम्हारी मोल ली हुई दासी नहीं है। वह भी तो राजाकी लड़की है।

जय०—तू नहीं जायगी ?

धाय—ईः ! इनकी लाल लाल आँखें तो देखो, जैसे दुर्वासा मुनि हों। क्या मारोगे ? मारो तो अचरज ही क्या है ! देशको मुसलमानोंके हाथमें सौंपके घरमें औरतोंको डाँटते-डपटते हो—क्रोध दिखाते हो—शर्म भी नहीं आती !

जय०—सभी निन्दा करते हैं मानता हूँ, किन्तु दाई मा, तू भी—मेरे प्राणोंमें क्या हो रहा है, सो क्या तू जानती है ?

धाय—जानती क्यों नहीं हूँ। उसने जादू कर दिया है जादू !—रानी बनकर गर्दनपर सवार हो गई है ! अच्छा जाती हूँ। बड़ी रानीको बुलाये देती हूँ। मगर यह कहे रखती हूँ, उसको कुछ कहना-सुनना नहीं ! सती लक्ष्मीका अपमान मुझसे देखा न जायगा। (प्रस्थान।)

जय०—जादू ही कर दिया है । मुझे तन्मय बना लिया है । और कुछ भी अच्छा नहीं लगता । कमला इस नगरको छोड़कर चली गई है—संसार सूना देख पड़ता है । आँखोंके आगे अन्धकार छाया हुआ है ।

(धीरे धीरे सरस्वतीका प्रवेश ।)

सरस्वती—मुझे बुलाया है ?

जय०—हाँ । छोटी रानी कहाँ है, जानती हो ?

सर०—नहीं ।

जय०—तुमसे कुछ नहीं कह गई ?

सर०—नहीं ।

जय०—तुमसे (सिर नीचा करके) कुछ झगड़ा तो नहीं हुआ ?

सर०—नहीं ।

जय०—(कुछ देरतक चुप रहकर) क्या तुम सच कह रही हो सरस्वती ?—मुझे विश्वास नहीं होता ।

सर०—विश्वास करना न करना तुम्हारे हाथ है । तुमने पूछा, इससे कह दिया ।

जय०—कमलाके यों चले जानेका कुछ कारण जानती हो ?

सर०—नहीं, ठीक कारण नहीं जानती ।

जय०—कुछ अनुमान किया है ?

सर०—हाँ, किया है ।

जय०—तुमने क्या अनुमान किया है ?

सर०—कहूँगी नहीं । मुझसे कहा न जायगा ।

जय०—कहा न जायगा ? न कहोगी ?

सर०—नहीं ।

जय०—सरस्वती, यही तुम्हारी पतिभक्ति है !—अच्छा खैर, मेरी बात सुनो। कमलाके लिए देश-त्याग करना होगा तो वह भी मैं करूँगा।—यह शायद तुम जानती हो?

सर०—अच्छी तरह जानती हूँ। देशको तो मुसलमानोंके हाथ बेच आये हो। उसे त्याग करोगे तो आश्चर्य ही क्या है!

जय०—देशको मैं बेच नहीं आया। मैंने सन्धि की है।

सर०—इसको सन्धि कहते हैं राणा? मुसलमान पाँच सौ वर्षसे देश, जाति और धर्मको पीड़ा पहुँचा रहे हैं—अत्याचार कर रहे हैं। उन्हीं मुसलमानोंको राठौर-वीर दुर्गादास और तुम्हारे भाई भीमसिंहने हराया था। तुमने उन्हीं हारे हुए मुगलोंसे यों सन्धि कर ली!—तुमने 'राणा' पदकी अप्रतिष्ठा की।

जय०—यह सन्धि मैंने किसके लिए की है?—अपने लिए या जातिके लिए?

सर०—छोटी रानीके लिए!—तुम्हें और कुछ पूछना है?

जय०—नहीं।

सर०—अच्छी बात है—तो मैं जाती हूँ।

जय०—जाओ—मैं भी जाता हूँ।

सर०—जैसा जी चाहे!—सुनो नाथ, एक बात कहे जाती हूँ—चाहे जहाँ जाओ, मगर शान्ति नहीं मिलेगी। जिस प्रचण्ड प्रवृत्तिके कारण आज तुम मुझे छोड़कर, पुत्र छोड़कर, राज्य छोड़कर चले जा रहे हो, वह प्रेम नहीं है—वह लालसा है। प्रेमकी गति नदीकी तरह स्थिर, स्वच्छ और धीमी होती है, झरनेकी तरह उच्छ्वाससे भरी, फेनैली और तेज नहीं होती। सच्चा प्रेम बिजलीके चमक ऐसा तीव्र

नहीं होता—वह चाँदनीकी तरह शान्त और मनोहर होता है ।—मेरी इस बातको याद रखना—अक्षर अक्षर मिलाकर देख लेना ।

(प्रस्थान ।)

जय०—मैं जानता हूँ सरस्वती, यह प्रेम नहीं है, लालसा है । यह लालसा धीरे धीरे मुझे राहुकी तरह ग्रसे लेती है—व्याधिके विषकी तरह सारे शरीरमें व्यापती जाती है । यह लालसा मुझे सर्वनाशकी तरफ ढकेल लिये जाती है । सब समझता हूँ । किन्तु उपाय नहीं—कोई उपाय नहीं । (उद्भ्रान्त भावसे प्रस्थान ।)

छट्ठा दृश्य ।

स्थान—पुण्यमाली गढके भीतर दुर्गादासके सोनेका कमरा ।

समय—रातके दस बजे ।

(पलगपर बैठे दुर्गादास एक पत्र पढ़ रहे हैं ।)

"इस प्रकार आपके सरल उदार भाई समरसिंहकी मृत्यु हुई । इधर हमारी महारानी चितारोहण कर स्वर्गीय स्वामीके पास पहुँच गईं, उधर स्त्री-भक्त कायर राणा जयसिंह मुगलोंसे एक अपमानजनक संधि करके, राज्य छोड़कर, दूसरी रानीको लेकर जयसमुद्रके किनारे रहनेके लिए चले गये हैं । उनके आचरणसे, महारानीके स्वर्गवाससे और वीर समरसिंहकी मृत्युसे राजस्थानके राजपूत सब तितर-बितर हो गये हैं ।—राठौर सेनापति, आप देशको लौट आइए । हमारे अपराधको क्षमा कीजिए । हम सबकी प्रार्थना मान लीजिए ।"

दुर्गा०—हूँ ! पत्रमें एक सौसे अधिक सामन्तोंके हस्ताक्षर हैं ।

[पत्रको लपेटकर तकियेके नीचे दबाकर दुर्गादास सिर झुकाये उसी कमरेमें टहलने लगते हैं । संभाजीका प्रवेश ।]

संभाजी—(शराबके नशेसे भर्राई हुई आवाजमें) सुना दुर्गादास !

दुर्गा०—क्या महाराज !

संभाजी—औरंगजेबको सारे पहाड़ी मुल्कसे मार भगाया ।—बेटा संभाजीसे युद्ध करने आया था ! जानता नहीं !

दुर्गा०—मगर, बीजापुर और गोलकुंडा तो शत्रुओंके हाथमें चले गये ?

संभाजी—इससे मेरी कोई हानि नहीं हुई । मैं इधर बीजापुरके पश्चिम प्रान्तपर दखल किये बैठा हूँ । इधर आगे बढ़कर आवेंगे तो संभाजी है, पीछे लौटेंगे तो संभाजीकी सेना है । नाकमें दम कर दूँगा। औरंगजेब बेटा नहीं जानता कि यह संभाजी है—और कोई नहीं ।

दुर्गा०—किन्तु इस तरहके उद्देश्य-हीन युद्धसे फल क्या ?—महाराज, मुझे अनुमति दीजिए, मैं राजपूतोंकी सेना ले आऊँ । मराठे और राजपूत मिलकर औरंगजेबके विरुद्ध खड़े हों ।

संभाजी—राजपूत ! राजपूत युद्ध करना जानते हैं ? उनकी सहायताका प्रयोजन नहीं है दुर्गादास, एक दिन मराठे ही राजपूतों और मुगलोंके दाँत खट्टे करेंगे ।

दुर्गा०—महाराज, राजपूतोंके दाँत खट्टे करनेसे मराठोंका गौरव नहीं बढ़ेगा । राजपूत भी हिन्दू हैं और मराठे भी हिन्दू हैं ।

संभाजी—हाँ, यह बात तो है ।—दुर्गादास, तुम्हारा बिछौना तो खूब मुलायम है न ?

दुर्गा०—राजपूतके लिए यह बिछौना खूब मुलायम है । हम लोगोंके लिए अक्सर घोड़ेकी पीठ ही बिछौनेका काम देती है ।

संभाजी—यहींपर तो हमारा तुम्हारा मत नहीं मिलता । युद्ध भी चाहिए, और उसके साथ साथ आराम भी चाहिए ।—दुर्गादास, जीवनमें और सब कठिनाइयाँ झेली जा सकती हैं, मगर बिछौना नर्म ही होना चाहिए ।—काबलेसखाँ—

नेपथ्यमें—हुजूर !

संभाजी—सब तैयार है ?

नेपथ्यमें—हाँ हुजूर !

संभाजी—अब तुम आराम करो दुर्गादास, मैं जाता हूँ ।

(प्रस्थान ।)

दुर्गा०—(टहलते टहलते) मराठोंकी जाति लड़नेवाली है !—इनका घोड़ा चलाना, युद्ध-कौशल और सहनशीलता सब अद्भुत हैं ! —इसके साथ अगर राजपूत जातिकी एकाग्रता, स्वार्थत्याग और दृढ़ताको भी मिला सकता, तो क्या न हो सकता था ! पर नहीं, वह न होगा । भारतका भाग्य अच्छा नहीं है । हिन्दू जाति बिखर गई है; उसका फिर एक होना बहुत कठिन है ।

(चुपचाप टहलने लगते है । सहसा दूरपर आर्त्तनाद सुन पड़ता है ।)

दुर्गा०—ओः ! कैसी तीव्र आर्त-ध्वनि है ! कैसी करुणध्वनि है ! —जैसे गूँज रही है ! यह तो पास, और भी पास, चली आती है ! —यह क्या ! यह तो मेरे दरवाजेपर ही पहुँच गई ! यह तो किसी स्त्रीकी चिल्लाहट है ! सुनकर हृदय जैसे फटा जाता है !—

(एक स्त्री, जिसके बाल बिखरे हुए है और कपड़े अस्तव्यस्त हो रहे है, दौड़ती हुई आकर दुर्गादासके कमरेमे प्रवेश करती है ।)

स्त्री—बचाओ ! बचाओ !

दुर्गा०—कुछ डर नहीं है बहिन, तुम डरो नहीं । तुम कौन हो बहिन ?

[नंगी तलवार लिये संभाजी और उसके पीछे काबलेसखाँका प्रवेश ।]

संभाजी—हरामजादी !—शैतानकी बच्ची ! तूने उसे दर्वाजा खोल कर भगा दिया ? तूने जान बूझकर ऐसा किया ?

स्त्री—वह भले घरकी बहू-बेटी थी।

संभाजी—वह भले घरकी बहू-बेटी थी तो तेरा क्या ?

(स्त्री भयके मारे काँपती हुई मूर्छित होकर गिर पड़ती है, संभाजी तलवार लिये उसकी तरफ झपटते हैं। दुर्गादास सहसा उनके सामने आ जाते हैं।)

दुर्गा०—संभाजी !—महाराज ! यह क्या ! औरतको मारनेके लिए झपटते हो !—वीर होकर !

संभाजी—चुप रहो—हट जाओ—

दुर्गा०—कभी नहीं। दुर्गादासने आजतक कभी अपने आगे अबलापर अत्याचार होते नहीं देखा। तलवारको म्यानमें कीजिए महाराज !

संभाजी—जानते हो, यह कौन है ?

दुर्गा०—यह चाहे जो हो मेरी बहिन है।

संभाजी—हट जाओ दुर्गादास !

दुर्गा०—होशमें आइए महाराज, आपने शराब पी है। नहीं तो आपके द्वारा एक अबलापर अत्याचार होना संभव नहीं।

संभाजी—मैं फिर कहता हूँ कि हट जाओ।

दुर्गा०—कभी नहीं।

संभाजी—तो फिर तलवार हाथमें लो। मैं निहत्थे शत्रुको मारना उचित नहीं समझता। तलवार लो।

दुर्गा०— इतना ज्ञान बना हुआ है ! तो फिर स्त्रीपर ऐसा अत्याचार करनेके लिए आप क्यों उतारू हैं ?—सुनिए महाराज—

संभाजी—-तलवार लो, (पैर पटककर) लो !—

दुर्गा०—-तलवार लेनेकी जरूरत नहीं है ।—

(संभाजीका गला पकडकर दुर्गादास पछाड देते है, तलवार छीनकर दूर फेंक देते है और फिर पगड़ी खोलकर संभाजीके दोनों हाथ बाँध देते है । काबलेसखाँ मौका पाकर भाग जाता है ।)

दुर्गा०— महाराज, आपका अतिथि हूँ । क्षमा कीजिएगा, इस बेअदबीको !

(दुर्गादास अपनी तलवार उठाकर उस स्त्रीके पास जाते है और उसे मुर्दा पाते है ।)

दुर्गा०—यह क्या !—बालिका मर गई ! डरके मारे ही मर गई ।—-महाराज, इस नन्हींसी जानके लिए तलवार लेके दौड़े थे !—तुम महात्मा शिवाजीके पुत्र हो !—धिक्कार है ! (प्रस्थान ।)

संभाजी—कौन है ?—पकड़ो—पकड़ो—

(बाहर हथियारोंकी झनकार सुन पड़ती है ।)

संभाजी—छोड़ना मत—पकड़ लो—

[खूनसे तर दुर्गादास फिर प्रवेश करते है । साथमें काबलेसखाँ और सिपाही भी है । काबलेसखा संभाजीके हाथ खोल देता है ।]

दुर्गा०—तुम लोग खड़े रहो । मैं भागूँगा नहीं । पचास जनोंके आगे एक आदमी अपनी रक्षा नहीं कर सकता । और अपने प्राण बचानेके लिए मैं अपने जाति-भाइयोंका खून बहाना भी नहीं चाहता । मैं एक स्त्रीके धर्मकी रक्षा कर सका, यही मेरी इस मृत्युका यथेष्ट पुरस्कार है । मैं उसकी जान न बचा सका, यही मुझे खेद है । अच्छी तरह जकड़ लो—बाँध लो । जो चाहे दण्ड दो ।

(दुर्गादास तलवार फेक देते है, दोनों हाथ बढ़ा देते है । संभाजीके इशारेसे डरते डरते काबलेसखाँ दोनो हाथ बांधता है ।)

संभाजी—दुर्गादास, तुमको बड़ा घमंड है।—अब बताओ, तुम्हें आगमें जलाऊँ, या जीता ही गाड़ दूँ ? क्या सजा दूँ ? किस तरह मरना चाहते हो ?

काबेलसखाँ—सरकार, अपने हाथसे मेहमानकी जान लेना मुनासिब नहीं । मेरी राय है, इसे इसके बड़े दोस्त औरंगजेबके पास भेज दीजिए ।—नतीजा एक ही होगा । फायदा यह होगा कि महाराजको अपने हाथसे बुरा काम न करना पड़ेगा ।

संभाजी—हाँ, यही ठीक है । काबलेसखाँ, इसको औरंगजेबकी सभामें पहुँचा आओ । वहाँ भेजना और मौतके मुँहमें पहुँचाना एक ही बात है । (जोरसे हँसना ।)

काबलेसखाँ—(स्वगत) इस तरह काबलेसखाँकी मुट्ठी भी गर्म होगी—बहुत इनाम पाऊँगा ।

दुर्गा०—अच्छी बात है !—मैं मरने जाता हूँ। लेकिन याद रक्खो संभाजी, एक दिन तुम्हारी भी यही दशा होगी—इसी काबलेसखाँके हाथसे । जो अब भी अपना भला चाहो तो शराब पीना छोड़ो, स्त्रियोंकी इज्जत करो और इस काबलेसखाँका विश्वास न करो ।

(पटपरिवर्त्तन ।)

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—अहमदनगरके महलका अन्तःपुर ।

समय—रात्रि ।

[बेगम गुलनार अकेली टहल रही है ।]

गुलनार—(आप-ही-आप) हम लोग किसके लिए दक्खिन आये हैं? लोग जानते हैं कि औरंगजेब अकबरको पकड़नेके इरादेसे आये हैं—बीजापुर और गोलकुंडा फतेह करने आये हैं—मराठोंको काबूमें करने आये हैं ।—ऐसा समझनेवाले बेवकूफ हैं । ये सब छोटे छोटे पुर्जे चल रहे हैं, मगर इनको चलानेवाला बड़ा चक्कर मैं ही यहाँ बैठे घुमा रही हूँ । अगर मेरी उँगलीका इशारा उधर न होता तो सैकड़ों अकबर, बीजापुर और संभाजी दिल्लीके बादशाहको दक्खिनकी तरफ घसीटकर न ला सकते ।—कैसी भारी ताकतको कैसे खुले हाथों फिजूल खर्च कर रही हूँ !—बाँदी !—शराब ला ।—दुर्गादास ! दुर्गादास !—तुम अगर जानते—जान सकते—मैं तुमको कितना चाहती हूँ ! तुमको अगर मालूम होता कि तुमने मेरे दिलमें कैसी मीठी-कड़वी, गर्म-सर्द, सख्त-मुलायम ख्वाहिश पैदा कर दी है ! अगर तुम जानते कि मैं तुम्हारे लिए बादशाहको दिल्लीसे मारवाड़, और मारवाड़से दक्खिन तक घसीट लाई हूँ !—अगर इन बातोंकी खबर होती, तो बेशक तुम मुझपर निसार हो जाते—मेरी आँखके इशारेपर नाचते ! बाँदी ! शराब ।—

(लौंडी शराब लाकर देती है । गुलनार शराब पीकर प्याला दूर फेंक देती है ।)

गुल०—ओः कैसी प्यास है !—दुर्गादास ! मैं शराब क्यों पीने लगी हूँ, जानते हो?—दुर्गादास ! म इतनी कमजोर और लागर हो

गई हूँ कि शायद आज तुम मुझे देखो तो पहचान न सको ! ओफ़ ! इश्ककी यह कैसी आग है ! इस जुनूँका यह कैसा जोश है ! इस मर्जका यह कैसा मीठा दर्द है !

(औरंगजेबका प्रवेश ।)

औरंग०—गुलनार !

गुलनार—जहाँपनाह, बन्दगी !

औरंग०—गुलनार ! बड़ी अच्छी खबर सुनाने आया हूँ।-दुर्गादास पकड़ लिया गया।

गुलनार—(उत्सुक भावसे) सच ! या दिल्लगी करते हो ?

औरंग०—दिल्लगी नहीं प्यारी, सच बात है। काबलेसखाँ उसे पकड़ लाया है। काबलेसखाँको मैंने खुश होकर इनामके तौर पर तीस हजार अशर्फियाँ दी हैं और उससे कह दिया है कि अगर संभाजीको पकड़ा सकेगा तो इससे दसगुना इनाम पावेगा।

गुलनार—सच बात है ! इतने दिनके बाद मैंने जाना प्यारे, तुम मुझे प्यार करते हो। हमारे दक्खिन आनेका मतलब आज पूरा हुआ।

औरंग०—लेकिन गुलनार, तुमने क्या शराब पी है ?

गुलनार—हाँ पी है। अब और एक प्याला दुर्गादासकी गिरफ्ता-रीकी खुशीका पियूँगी। बाँदी—

औरंग०—यह क्या गुलनार ! मेरे महलके भीतर शराब पीना !

गुलनार—(गर्वके भावसे उठकर खड़े होकर) तो इससे हुआ क्या बादशाह सलामत ?

औरंग०—जानती हो, मैं शराब पीनेके खिलाफ हूँ !

गुलनार—तुम हो सकते हो, मैं नहीं हूँ।

औरंग०—तुम नहीं हो ? तुमने दीन इसलाम नहीं कुबूल किया ? तुम मुसलमान नहीं हुई ?

गुलनार—मैंने अपनी मर्जीसे दीन इसलाम कुबूल किया था। जी चाहे तो मैं उसे छोड़ भी सकती हूँ !—दीन ? दीनके इन झगड़ोंके लिए मैं दुनियामें नहीं पैदा हुई । जरा मेरी तरफ देखो ! ये गोल-गोल गुलाबी मुलायम हाथ देखो ! ये लंबे चिकने काले बाल देखो ! यह चमकीला सुनहला रंग देखो ! यह हुस्न क्या मसजिदमें जाकर सिर फोड़नेके लिए है ? तुम बड़े दीनदार और ईमानदार हो जहाँपनाह, तो फिर महलमें मुझको न रखकर किसी मुल्लाकी बेटीसे निकाह करते !

औरंग०—तुमको होश नहीं है गुलनार, कि तुम क्या बक रही हो।

गुलनार—मुझे सब होश है—सुनो । दुर्गादास कहाँ है ?

औरंग०—दिलेरखाँकी देख-रेखमें । मैं सोच रहा हूँ कि उस पाजीको क्या सजा दी जाय । पहले—

गुलनार—उसे कोई सजा न देना । छोड़ देना ।

औरंग०—यह क्या ?—यह भी कहीं हो सकता है ?

गुलनार—हो सकता है, अच्छी तरह हो सकता है और इसे तुम खुद ही समझ रहे हो । उसे सिर्फ छोड़ ही न दोगे, बल्कि मेरे साथ कैदखानेके भीतर चलोगे !—मैं कहूँगी, दुर्गादासको छोड़ दो—और तुम अपने हाथसे उसे छोड़ दोगे ।

औरंगजेब—तुमको होश नहीं है गुलनार, तुमने बहुत शराब पी ली है।—जब तुम होशमें आओगी तब बातचीत होगी । (प्रस्थान ।)

गुलनार—अच्छी बात है ! मैं होशमें आती हूँ । दुर्गादास ! तुमको मैं अपने हाथसे कैदसे छुड़ाऊँगी । मैं इसे अपने लिए बड़े ही फ़ख़की बात समझती हूँ । मैं अपने हाथसे तुम्हारी हथकड़ी-बेड़ी खोलकर—तुमको अपनी छातीसे लगाकर—अपना इश्क जता कर—तुमको निहाल कर दूँगी ! दुर्गादास ! मैं तुमको दिल्लीके तख्तपर बिठाऊँगी; और मैं तुम्हारी बेगम बनूँगी । तुम्हारे लिए वह कैसी इज्जत होगी !—और औरंगजेब ! तुम तो मेरी इस मुट्ठीमें हो ! तुमको तख्तसे उतारते कितनी देर लगती है !—दुर्गादास ! मैंने तुम्हारी सब गलतियोंको—सब कुसूरोंको—माफ किया । इतने दिनोंतक जो तुमने मुझे चाहकी आगमें जलाया—जंगल जंगल, पहाड़ पहाड़ अपने पीछे मुझे दौड़ाते रहे—सो सब मैंने माफ किया ! दुर्गादास ! आज तुम्हारे सब कुसूर मैंने माफ कर दिये ! ओः, आज कैसी खुशीका दिन है । (प्रस्थान ।)

आठवाँ दृश्य ।

स्थान—छावनीका कैदखाना ।

समय—आधी रातसे कुछ पहले ।

[हथकड़ी-बेड़ी पहने दुर्गादास बैठे हैं ।]

दुर्गा०—अन्तको यह दशा भी हुई ! जो लाञ्छना आजतक विजातीय विधर्मी शत्रुओंके हाथों नहीं हुई थी वही आज अपनी जातिके स्वधर्मी हिन्दूके हाथसे हुई !—संभाजी, तुम समझते हो कि मराठे लोग एक दिन राजपूतों और मुसलमानोंको एक साथ परास्त करेंगे । यह होता तो भी कुछ दुःख न था । किन्तु यह न होगा । देखोगे कि एक दिन मराठे, राजपूत और मुसलमान तीनों एक साथ

किसी और जातिके पैरोंपर लोटेंगे । विश्वासघातका दण्ड अवश्य अवश्य मिलता है ।—कौन ?—कैदखानेका दरवाजा किसने खोला ?

[सिंगार किये हुए गुलनारका प्रवेश ।]

दुर्गा०—यह कैसी सुन्दर सजावट है ! यह कैसी रूपकी ज्योति है !—आप कौन हैं ?

गुलनार—मैं हूँ बेगम गुलनार !

दुर्गा०—बेगम गुलनार ?

गुलनार—पहचान नहीं पाते दुर्गादास ? एक दफा हम लोगोंकी मुलाकात हो चुकी है । उस दिन मैं कैदीकी हालतमें थी । आज तुम मेरे कैदी हो ।

दुर्गा०—आप मुझे दण्ड देने आई हैं ?

गुल०—नहीं, मैं तुमको कैदसे रिहाई देने आई हूँ ।

दुर्गा०—एहसानका बदला चुकानेके लिए ?

गुल०—नहीं !

दुर्गा०—तो फिर ?—बादशाहके हुक्मसे ?

गुल०—गुलनार बादशाह औरंगजेबके हुक्मकी पर्वा नहीं रखती । आजतक वे ही मेरा हुक्म मानते आये हैं ।

दुर्गा०—तो ?

गुल०—मैं अपनी खुशीसे तुमको रिहाई देने आई हूँ ।—क्यों कि मैं तुमको चाहती हूँ—तुम मेरे दिलदार हो !

दुर्गा०—यह क्या आप दिल्लगी करती हैं ?

गुल०—तुम्हें बड़ा ताज्जुब मालूम पड़ता है ?—मैं हिन्दोस्तानके बादशाहकी बेगम होकर एक राजपूत सरदारको दिलदार कह रही हूँ !

बेशक, ताज्जुब होनेकी बात ही है। लेकिन तुम मेरी मौजको नहीं जानते—मैं मामूली औरतोंकी तरह कोई काम नहीं करती। बादशाहकी बेगम होकर भला कोई औरत इस तरह एक मामूली सरदारको 'दिलदार' 'दिलरुबा' कह सकती है? लेकिन निरालापन ही मुझे पसंद है। जो मामूली है, जिसे सब लोग कर सकते हैं, वह बेगम गुलनार नहीं करती। गुलनार जब घोडा दौड़ाती है तब उसकी रास छोड़ देती है। मामूली ऐश, आराम, या खुशी वह नहीं चाहती। बेगम गुलनार आजाद है. हर काममें आजादी ही उसे पसन्द है।

दुर्गा०—लेकिन—बेगम—

गुल०—सुनो, मेरी बात सुनो। मेरा हर काम अनोखा, अचंभेका होता है। यह इतनी बड़ी मुगलोंकी सल्तनत क्या एक बड़ा भारी अचंभा नहीं है?—यह अचंभा मेरा ही खेल है! यह सल्तनत मजमून है, दस्तखत बादशाहके हैं, इबारत मेरी गढ़ी है! मेरी उँगलीके इशारेपर सल्तनतमें जंग मच जाता है और मेरी ही आँखके इशारेसे अमन चैन हो जाता है! मेरे मुस्कराकर देखनेसे कितने ही राजा बन जाते हैं, मेरी भौं टेढ़ी होते ही राजोंके राज-पाट मिट्टीमें मिल जाते हैं। इतने दिनोंसे यही होता आ रहा है। जिस दिन तुमने मुझे गिरफ्तार किया था, उस दिन उसे मैंने तकदीरका लिखा मान लिया था—किसी इन्सानके आगे सिर नहीं झुकाया। उसी दिन मैंने तुमको प्यारकी नजरसे देखा था! लेकिन अपनी चाह तुमको जताई नहीं थी। मैं तुम्हारे काबूमें, कैदीकी हालतमें थी। उस वक्त, मजबूर होनेकी हालतमें, फकीरकी तरह प्यारकी भीख माँगना मेरी आदतके खिलाफ था। आज तुम मेरे कैदी हो। यही चाह जतानेका ठीक मौका है।—दुर्गादास, मैं तुमको चाहती हूँ!

दुर्गा०—बेगम साहब, आपको शायद यह खयाल नहीं कि आप क्या बक रही हैं ।

गुल०—बादशाहको डरते हो ? आओ, देखोगे, बादशाह मेरे गुलाम हैं; मैं उनकी लौंडी नहीं हूँ । तुमको मैं दिल्लीके तख्तपर बिठलाऊँगी !—आओ !

दुर्गा०—बेगम साहब, माफ कीजिए ।—बुरी राहपर चलकर मैं सारी दुनियाका भी बादशाह होना नहीं चाहता ।

गुलनार—सल्तनत नहीं चाहते ?

दुर्गा०—नहीं बेगम साहब,—आप लौट जाइए ।

गुलनार—क्या तुम मुझे भी नहीं चाहते ?

दुर्गा०—नहीं । हम राजपूत लोग पराई स्त्रीको माता समझते हैं । अपनी इज्जत आप न रक्खें, मैं रक्खूँगा !

गुलनार—(दमभर सन्नाटेमें खड़े रहनेके बाद) क्या दुर्गादास, बादशाह औरंगजेब जिसके इशारेपर चलते हैं उसी गुलनारके गले लगनेसे—उसकी उल्फतका दम भरनेसे—तुम इनकार कर रहे हो ?

दुर्गा०—बेगम साहब, जगतमें सभी औरंगजेब नहीं हैं । पृथ्वी-पर औरंगजेब ऐसे आदमी भी हैं और दुर्गादास ऐसे भी ।

गुलनार—यह क्या मुमकिन है ?—जानते हो दुर्गादास, तुम्हारे लिए इसका नतीजा क्या होगा ?

दुर्गा०—जानता हूँ—मौत ।

गुलनार—नहीं दुर्गादास, तुम हँसी कर रहे हो ।

दुर्गा०—जीवनमें इससे बढ़कर गंभीर होकर मैंने कभी कोई बात नहीं की ।

गुलनार—क्या ! मुझसे नफरत करते हो?—मेरा कहना तुमको मंजूर नहीं? दुर्गादास, मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि गुलनार घुटने टेककर भीखकी तरह किसीसे प्यार नहीं माँगती—वह दुआकी तरह अपना प्यार बाँटती है।—पसन्द कर लो—बेगम गुलनारका प्यार या मौत?

दुर्गा०—पसन्द कर लिया, मैं मौत चाहता हूँ।

गुलनार—मौत? अच्छा यही सही—मैं अपने हाथसे तुम्हारी जान लूँगी।—गुलनारसे एक चीज पाओगे—मोहब्बत या मौत। अगर मोहब्बत नहीं चाहते, तो मरनेके लिए तैयार हो जाओ—कामबख्श!

[गुलनारके पुत्र कामबख्शका प्रवेश।]

गुलनार—कामबख्श,—मारो! इसे मारो! इसी दम मार डालो—देख क्या रहे हो!—मारो!

कामबख्श—क्यों अम्मीजान?—बादशाहके हुक्मसे—

गुलनार—बादशाहका हुक्म? मेरे हुक्मपर बादशाहका हुक्म? इसी दम मारो।—क्या! मेरा कहना न मानोगे? (चिल्लाकर) मारो—मारो—मारो!

कामबख्श—(तलवार खींचते खींचते) अच्छी बात है, तो मरनेके लिए तैयार हो जा कैदी।

दुर्गा०—मैं तैयार हूँ।

(कामबख्श दुर्गादासको मारनेके लिए तलवार उठाता है। इसी समय दिलेरखाँका प्रवेश।)

दिलेर०—खबरदार कामबख्श!—नहीं तो—

(कामबख्शकी तरफ पिस्तौल तानना।)

गुलनार—तुम कौन हो ?

दिलेरखाँ—मैं हूँ मुगल-फौजका सरदार दिलेरखाँ ।

गुलनार—क्या ! तुम्हारी इतनी मजाल कि तुम मेरे हुक्मके खिलाफ काम करोगे ?

दिलेर०—दिलेरखाँ किसीको नहीं डरता बेगम साहब, वह अपनी नेकचलनी और नेकनीयतीके भरोसे खुदाके सामने भी सच कहनेमें नहीं हिचक सकता, फिर तुम क्या चीज हो।—गुनहगार! बेहया!—यह न समझना कि मैंने कुछ सुना नहीं । सब सुना है। (दुर्गादासकी ओर फिरकर) दुर्गादास, बहादुर, मैं जानता था कि तुम ऊंचे दर्जेके आदमी हो, लेकिन यह मुझे खयाल न था कि तुम इतने ऊँचे दर्जेके आदमी हो। मैं अपने हाथसे तुम्हारी हथकड़ी-बेड़ी खोले देता हूँ (बन्धन खोलकर)। चले आओ बाहर—मैं अपना सबसे अच्छा घोड़ा तुमको देता हूँ। साथमें पाँचसौ सवार देता हूँ। देशको लौट जाओ।—मेरे हुक्मसे कोई मुगल-सरदार तुमसे न बोलेगा। चले आओ बहादुर! बन्दगी बेगम साहब!

(दुर्गादासका हाथ पकड़कर दिलेरखाँका प्रस्थान। गुलनार और कामबख्श पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़े रहते हैं।)

[पर्दा गिरता है।]

पाँचवाँ अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—अकबरका डेरा।

समय—रात्रि।

[सिंहासनपर अकबर बैठे हैं। सामने नाचनेवालियाँ नाचती-गाती हैं]

नील गगन, चंद्रकिरन, तारनगन ये।
हेरो नयन हर्षमगन, सकल भुवन ये॥ नील०॥
निद्रित सब कूजन-रव नीरव भव ये।
मोहन नव, हेरि विभव, धरनी नव ये॥ नील०॥
डोलत घन, स्निग्ध पवन, चाँदनि घन ये।
नन्दनवनतुल्य भुवन, मोहत मन ये॥ नील०॥

अकबर—क्या बात है! वाहवा! सुभानअल्लाह!

[इसी समय हँसते हुए काबलेसखाँका प्रवेश।]

अकबर—कौन? काबलेसखाँ संभाजी कहाँ हैं?

काबलेस—अब संभाजी कहाँ! शाहजादा, संभाजी यों (गिरनेका संकेत)—

अकबर—इसके क्या माने?

काबलेस—गुडुप हो गये!

अकबर—कुएँमें गिर पड़े? शायद ज्यादा पी ली थी?

काबलेस—नहीं साहब, संभाजी गिरफ्तार हो गये। अब वह आपके अब्बाजानके तंबूमें हैं। हाथोंमें—(बन्धनकी अवस्थाका भाव दिखाना)

अकबर—यह क्या!—ऐसा होना गैरमुमकिन है!

काबलेस—गैरमुमकिन नहीं शाहजादा साहब, एकदम ठीक है। अब आप अपनी राह देखिए।

अकबर- —तो क्या यह सच कह रहे हो काबलेसखाँ ?

काबलेस—(सिर हिलाकर) बिल्कुल सच है शाहजादा साहब, झूठ बात शायद ही कभी काबलेसखाँकी जबानसे निकलती हो। संभाजी एकदम गिरफ्तार हैं। अब आपने क्या करना ठीक किया है ? आपका मुँह तो स्याह पड़ गया !—(अकबर चुप रहते हैं)—सुनिए शाहजादा साहब, अगर मेरी राय आप पूछें तो मैं यही कहूँगा कि आप मेरे साथ बादशाहके पास चलें।

अकबर —(फीकी हँसी हँसकर) बादशाहके पास ? उसकी बनिस्बत मैं शेरके सामने जानेको राजी हूँ।

काबलेस—शाहजादा साहब, आप मेरे साथ बादशाहके पास चलिए। कुछ डर नहीं है। वे आपको कुछ न कहेंगे। बल्कि खुश होकर आपकी खातिर करेंगे। मैं जामिन होता हूँ।

अकबर —बादशाहके पास ?

काबलेस—हाँ शाहजादा साहब, बादशाहके पास।—क्या राय है ?

[दुर्गादासका प्रवेश ।]

दुर्गा०—(काबलेसखाँसे) नकमहराम ! पाजी ! विश्वासघाती ! अपने जालमें शाहजादाको भी फँसाना चाहता है ?

अकबर—यह क्या ! दुर्गादास कहाँसे आ गये !

काबलेस—हाँ दुर्गा—(काँपता है।)

दुर्गा०—काबलेस, तेरी अभिलाषा पूरी नहीं हुई। मैं जीता जागता लौट आया। यदि तूने मुझे शत्रुके हाथमें सौंप दिया था, तो खैर कोई बड़ी बात नहीं। मैं तेरा कोई नहीं हूँ। मगर अन्तको तूने अपने स्वामी संभाजीसे भी दगा किया !—उनको भी पकड़ा दिया !—कृतघ्न ! नरपिशाच !

काबलेस—नहीं—मैंने—नहीं—महाराज—

दुर्गा०—तूने नहीं? काबलेस, महाराज संभाजी तेरी सलाहसे एक गौने आई हुई ब्राह्मण-बालिकाको हरनेके लिए गढ़के बाहर गये थे या नहीं?—सच बोल; झूठ बोलनेसे छुटकारा न होगा।

काबलेस—(काँपते हुए) जी।

दुर्गा०—और तूने पहले ही यह खबर शाहजादा आजिमको दे रक्खी थी या नहीं? उसके बाद आजिमने ५०० मुगल-सिपाही साथ लाकर महाराज संभाजीको कैद कर लिया।—क्यों न? ठीक है न?

काबलेस—जी! (भागना चाहता है।)

दुर्गा०—भाग मत। (काबलेसखाँकी गर्दन पकड़कर) काबलेसखाँ! खुदाको याद कर ले।

काबलेस—माफ करो खुदावन्द—मैं आपका कुत्ता हूँ।

(भयसे विह्वल काँपता हुआ काबलेसखा दुर्गादासके पैर पकड़ता है।)

दुर्गा०—जा, तुझे न मारूँगा। तेरी हत्या करके अपने हाथोंको अपवित्र और कलंकित न करूँगा। तूने संभाजीका परलोक बिगाड़कर अन्तको यह लोक भी बिगाड़ा। तुझे नरकमें भी जगह नहीं मिलेगी—जा। (लात मारकर काबलेसखाँको निकाल देते हैं।)—शाहजादा साहब, एक दिन मैंने संभाजीसे कहा था कि यह शराब और यह ऐयाशी ही तुम्हारा सर्वनाश करेगी और वह सर्वनाश इसी काबलेसखाँके हाथसे होगा।—और ठीक वही हुआ।—शाहजादा साहब, इस दृष्टान्तसे शिक्षा प्राप्त कीजिए। पहले भी कई बार कह चुका हूँ और आज फिर कहता हूँ—शराब और वेश्या छोड़िए।—ये दोनों नशे बहुत भयानक हैं।

अकबर—बहुत ज्यादा देर हो गई दुर्गादास! बहुत ज्यादा देर हो गई!

दुर्गा०—कुछ भी देर नहीं हुई शाहजादा साहब, अभी समय है। कोई प्रवृत्ति ऐसी नहीं, जो दबाई न जा सके। उसके लिए आन्तरिक चेष्टा होनी चाहिए। आप अच्छे वंशके लड़के हैं; आपने अच्छी शिक्षा पाई है; आप उच्च हृदयके आदमी हैं। आप चेष्टा करें, तो क्या इन बुरी आदतोंको छोड़ नहीं सकते?

अकबर—(दमभर चुप रहकर) दुर्गादास, तुमने ठीक कहा। मैं इस नशेको छोड़ दूँगा। सिर्फ यही नशा नहीं, इस दुनियाका नशा छोड़ दूँगा। सब छोड़ दूँगा।

दुर्गा०—यह क्या शाहजादा साहब!

अकबर—हाँ दुर्गादास, सब छोड़ दूँगा। इस जिन्दगीसे नफरत हो गई है। दूसरेके गले पड़कर जिन्दगी बिता रहा हूँ, तब भी ऐशआराममें डूबा हुआ हूँ। यह तबीयतकी कमजोरी क्या कम नालायकी है?—इस बातका ऐसा खयाल आजतक मुझे कभी नहीं हुआ। (सिर झुका लेते हैं।)

दुर्गा०—सुनिए शाहजादा साहब, मेरे साथ मारवाड़ चलिए—जब तक मैं जिऊँगा तबतक आपको कुछ डर नहीं।—चलिए।

अकबर—नहीं दुर्गादास, मैं मारवाड़ न जाऊँगा। मैं मक्के शरीफकी जियारतको जाऊँगा। बहुत दिनोंसे तुम्हारे गले पड़ा हुआ हूँ। मेरी वजहसे तुमको बहुत तकलीफें उठानी पड़ी हैं। माफ करो, मुझे बचानेके काममें तुमने अपने देश और अपने आदमियोंको छोड़ दिया। मेरे कारण तुम्हारा बहादुर भाई मरा—और तुम भी मौतके मुँहसे लौट आये।

दुर्गा०—यह मेरा धर्म था शाहजादा साहब, कर्तव्य था—फर्ज था।

अकबर—फर्ज था? मैं भी मक्के जाकर इसी तरह फरायजको पूरा करना सीखूँगा। बहुत गुनाह किये हैं; किसी भी काममें मन नहीं

लगाया, ऐश-आराममें ही इतनी जिन्दगी बिताई है। बापका बागी बना, लापर्वाही करके औरतकी जान ले ली; जानबूझकर अपने लिए तुमको मुसीबतमें डाल दुख पहुँचाया। आखिरको संभाजीके मरनेका सबब हुआ। जाता हूँ दुर्गादास, मेरे लिए जहाँ इतना किया है वहाँ इतना और करना। तुम अपने देशको जाओ—मेरी रजियाका ख्याल रखना। उसकी हिफाजत करना दुर्गादास,—मैं उसको तुम्हें सौंपे जाता हूँ।—अच्छा जाता हूँ मेहरबान दोस्त!

(अकबर दुर्गादाससे हाथ मिलाते हैं।)

दूसरा दृश्य।



स्थान—जयसमुद्र तालाबके किनारेका राजमहल।

समय—सायंकाल।

[जयसिंह और कमला, दोनों महलके बरामदेमें खड़े बातें कर रहे हैं।]

जय०—कमला, तुम मुझसे विमुख न होना। तुम्हारे लिए मैंने देश छोड़ा है, राज्य छोड़ा है, पुत्र छोड़ा है।

कमला—किसने छोड़नेके लिए कहा था?

जय०—तुमने।

कमला—कभी नहीं। मैंने केवल यह कहा था कि बड़ी रानी और छोटी रानीमेंसे एकको पसंद कर लो। दोनोंके होकर नहीं रह सकते।

जय०—मैंने तुमको लिया। बड़ी रानीको छोड़ दिया।

कमला—किन्तु राज्य छोड़ देनेके लिए मैंने नहीं कहा था। बड़ी रानीके लड़के अमरसिंहको राज्य दे आनेके लिए नहीं कहा था। मेरा पुत्र क्या कोई है ही नहीं?

जय०—ओः ! इसीके लिए तुमसे बड़ी रानीका झगड़ा हुआ था ! तो तुमने इतने दिनोंतक बताया क्यों नहीं कमला ? बड़ी रानीने पुत्रके अमंगलकी आशंकासे उस दिन लड़ाई झगड़ेका कारण नहीं बतलाया। अब समझमें आया—कमला, राज्य तो अमरसिंहका ही है। अमरसिंह बड़ा लड़का है। शास्त्रके अनुसार बड़ा लड़का ही राज्यका उत्तराधिकारी होता है।

कमला—तो तुम शास्त्रको मुझसे बढ़कर मानते हो ?

जय०—एक दिन मैं तुमको सब शास्त्रोंसे बढ़कर मानता था।

कमला—हाँ !—तो फिर तुम्हारी क्या यह इच्छा है कि तुम्हारे मरनेके बाद मैं खानेके लिए बड़ी रानीके अधीन रहूँ ?

जय०—(सन्नाटेमें आकर, दमभरके बाद) कमला, तुमको इतना आगेका खयाल है ? मैंने तो कभी इतना सोचा नहीं—तो तुमको पुत्रके लिए नहीं, अपने लिए चिन्ता है ?

कमला—अपने लिए चिन्ता करना क्या इतना बुरा है राणा ? कौन अपने लिए चिन्ता नहीं करता महाराज !

जय०—कहाँ ! मैंने तो कभी अपने लिए चिन्ता नहीं की रानी ! मैं राणा राजसिंहका पुत्र हूँ। मैं चाहता तो क्या नहीं हो सकता था। यश, मान, ऐश्वर्य, प्रभुत्व और विलास छोड़कर—अपनी जातिका धिक्कार स्वीकार कर—मैं तुम्हारे लिए वनवासी हुआ हूँ। आगेकी कौन कहे, मैंने तुम्हारे कारण जो था, उसे भी छोड़ दिया है।

कमला—मेरे लिए छोड़ दिया, या मेरे रूपके लिए ? तुमने मुझे ब्याहा था मेरे लिए नहीं, मेरे रूपके लिए। मैंने भी तुमसे ब्याह किया था तुम्हारे लिए नहीं, तुम्हारे राज्यके लिए।

जय०—मेरे राज्यके लिए ? यह मैं क्या सुन रहा हूँ !—इतने दिनोंतक तो क्या मैं प्रेमका स्वप्न ही देख रहा था ? मैंने सोचा था कि

तुमने अपना हृदय मुझे अर्पण कर दिया है। मैं सोचता था कि तुमने यह रूप-वैभव अपनी इच्छासे मुझे सौंप दिया है। मैं तुम्हारे इस दानके मोहमें मुग्ध हो रहा था। कमला, तुमने मेरा बड़े सुखका स्वप्न मिटा दिया!—कमला! कमला! तुम नहीं जानतीं कि तुमने मेरा कैसा सर्वनाश कर डाला!

कमला—मैंने तुम्हारा सर्वनाश किया, या तुमने मेरा सर्वनाश किया?

जय०—रानी, मैं तुम्हारे रूपके लिए तुमको प्यार करता हूँ?—कहाँ है वह रूप? अब तो वह रूप नहीं देख पड़ता। न जाने कहाँसे आकर एक दिव्य ज्योति तुम्हारे मुखपर पड़ रही थी; वह चली गई। इस समय तुम्हारे मुखपर उस रूपका ढाँचा भर दिखाई पड़ रहा है। रानी,—कुछ रूप तो ईश्वरके यहाँसे मिलता है और कुछ सौन्दर्य स्त्री आप उत्पन्न कर लेती है। स्त्रीके उज्ज्वल हृदयकी प्रतिभा उसके मुखपर झलककर एक नवीन राज्य—एक सुन्दर स्वर्ग—की रचना करती है। बाहरी रूप उसके आगे कोई चीज नहीं है। रानी तुम भूलती हो, मैं केवल रूपके लिए ही तुमको प्यार नहीं करता था—तुम्हारे लिए ही तुम्हें प्यार करता था।

कमला—झूठ बात है।

जय०—रूप? संसारमें क्या रूपकी—सौन्दर्यकी—कमी है रानी? जहाँ अँधेरेका और चाँदनीका इंद्रजालका खेल होता है—अन्नके हरेभरे खेतोंमें हरियालीकी शोभा लहराती है—अनन्त नील आकाशका पसार है, जहाँ जिधर देखो उधर ही सौन्दर्य, सुगन्ध, संगीतकी भरमार है, जहाँ आकाशके हृदयसे दिनरात सौन्दर्यकी वर्षा हुआ करती है—पृथ्वीके भीतरसे निकले हुए फूलोंसे रूप और सुगन्धका फुहारा छूटा करता है, उस संसारमें मैं तुम्हारे निकट रूपके लिए गया था? कहाँ है वह तुम्हारा रूप कमला? कहाँसे आया था? अब कहाँ चला गया?

कमला---अब तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

जय०---अभिप्राय ? मालूम नहीं । मोहका नशा उतर गया है । लेकिन बहुत ही अचानक । मुझे समय दो ।---रूप ! रूप ! बाहरी रूप ! हृदय-हीन नारीका रूप---

[दरबानका प्रवेश ।]

दरबान---(प्रणाम करके) महाराना साहब, मन्त्रीजी मिलना चाहते हैं ।

जय०---मन्त्री ?---यहाँ ?---जाओ, यहीं ले आओ ।

(दरबानका प्रस्थान ।)

जय०---(कमलासे) लेकिन कमला, इतने दिनतक किस तरह किस उपायसे तुम अपने नीच हृदयको सुन्दर पर्देसे ढके रहीं ? रत्ती-भर भी मुझे मालूम नहीं हुआ कि तुम इतनी ओछी तबियतकी हो ! जाओ कमला, भीतर जाओ, तुमपर मुझको क्रोध नहीं है । तुमको भी बड़ी आशा थी, पर निराश होना पड़ा---और मुझको भी बड़ी आशा थी, पर निराश होना पड़ा । भीतर जाओ ।

कमला---(जाते जाते, स्वगत) शायद जो था वह भी खोया !

(प्रस्थान ।)

जय०---इसीके लिए मैंने सब छोड़ दिया ! साक्षात् लक्ष्मीसी बड़ी रानी सरस्वतीको छोड़ आया ! सरस्वती ! अब शायद मैं कुछ कुछ तुमको पहचान सका हूँ ! उस दिन तुमने सच कहा था कि " यह प्रेम नहीं, मोह है--एक दिन छूट जायगा । " सरस्वती ! तुम सदा सच बोलती हो, किन्तु सबसे बढ़कर सत्य तुम्हारी यह बात है ।

(मन्त्रीका प्रवेश ।)

जय०---क्यों मन्त्रीजी, राज्यकी खबर क्या है ?

मन्त्री---राणा साहब, मैं नौकरी छोड़ना चाहता हूँ ।

जय०—क्यों–क्यों ! क्या हुआ मन्त्रीजी ?

मन्त्री—क्या बताऊँ, क्या हुआ। राणा साहबके बड़े कुँअरने मेरा बड़ा अपमान किया है। मैं इस पदपर काम करते करते बूढ़ा हो गया, पर मेरा ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ।

जय०—क्या अपमान किया ?

मन्त्री—कुँअर अमरसिंहने एक दिन एक मस्त हाथी खोलकर शहरमें छोड़ दिया। उसने कई पुरवासियोंको मार डाला। मैंने उसके लिए कुँअरसे कहा सुना, तो उन्होंने सिर मुड़ाकर गधेपर चढ़ाकर शहरभरमें मुझे घुमाया।

जय०—यहाँ तक ! अमरको यह खयाल नहीं कि मैं उसे तुम्हारी देख-रेखमें छोड़ आया हूँ।

मन्त्री—उनके किसी भी कामसे यह प्रकट नहीं होता कि उनके हृदयमें आपके प्रति श्रद्धा या भक्ति है।

जय०—चलो, कल मैं राजधानीको लौट चलूँगा और इस मामलेका यथोचित विचार करूँगा।—चलो।—(मंत्रीका प्रस्थान।) नारी !—नारी ! तुम इतनी बनावट कर सकती हो ?—हाँ, अब समझ रहा हूँ ! अब समझमें आ रहा है !—

तीसरा दृश्य।



स्थान—जोधपुर। गढ़का शिखर।

समय—चाँदनी रात।

[अजितसिंह और रजिया एक चबूतरेपर बैठे हैं।]

रजिया—कैसा सुन्दर चाँद निकल रहा है ! देखो अजित, वह देख रहे हो पूरबमें एक काले बादलके ऊपर निकल रहा है। बादलके ऊपरी हिस्सेमें जैसे किसीने चारों तरफ एक सुनहली लकीर

खींच दी है । बादलके नीचेका सब हिस्सा खूब गाढ़े काले रंगका है । चाँदका चौथाई हिस्सा बादलके ऊपर दिखाई पड़ रहा है ।—कैसा खूबसूरत, कैसा ठंडक पहुँचानेवाला, कैसा चमकीला चाँद है !—कैसा सुंदर देख पड़ रहा है अजित ?

अजित०—नहीं, मैं तो केवल तुमको देख रहा हूँ ।

रजिया—तो तुम बड़ी भूल कर रहे हो । इस धरतीपर चारों तरफ इतनी देखनेकी चीजें हैं, उन्हें छोड़कर मुझे देखते हो ? कैसी सुंदर यह धरती है ! मुझे जान पड़ता है, यह दुनिया एक ऐसा गीत है जो कभी न थकता है, न रुकता है और न कभी खतम होता है । यह आसमानी नीला रंग उसका ' चढ़ाव ' है, यह धरतीकी हरियाली उसका ' उतार ' है । रोशनी उसकी ' दून ' है । अँधेरा उसकी ' सम ' है । ये पहाड़ उसकी ' तान ' हैं । ये लहरें उसकी ' मींड़ ' हैं । कैसी सुंदर धरती है अजित !

अजित०—मुझे तुम्हारा मुख ही सबसे सुंदर देख पड़ता है ।

रजिया—तुम मेरे चेहरेको ही सबसे सुंदर देखते हो ? यह अधखिली गुलाब-कलीकी शरमीली नजरसे बढ़कर सुंदर है ? किनारेपर थिरकती हुई लहरोंके खेलसे बढ़कर सुंदर है ? इस काले बादलमें छिपे हुए चाँदसे भी बढ़कर सुंदर है ? अजित, तुम अभी बिलकुल बच्चे हो ।

अजित०—मैं अब बच्चा नहीं हूँ, इसीसे तुम्हारे मुखको सबसे बढ़कर सुंदर देखता हूँ । इस समय रजिया, मैं समझता हूँ कि जगत्‌का श्रेष्ठ सार-सौन्दर्य स्त्रीजाति है और स्त्रियोंमें तुम रत्न हो ।

रजिया—मैं ? मुझे इसपर यकीन नहीं ।

अजित०—रजिया, तुम मुझे प्यार नहीं करती, इसीसे तुमको विश्वास नहीं होता ।

रजिया—प्यार नहीं करती ? मालूम नहीं, प्यार करना किसे कहते हैं अजित ! लेकिन हाँ, अगर जिसे प्यार करो उसे हरघड़ी देखनेको जी चाहता हो—उसे देखकर, उसकी आवाज सुनकर, नसनसमें बिजली दौड़ जाती हो— तो मैं तुमको प्यार करती हूँ ।— बहुत प्यार करती हूँ !

अजित०—मुझे चाहती हो रजिया !—सच !—

रजिया—झूठ बोलना मैंने सीखा ही नहीं ।

अजित०—प्यारी ! (हाथ पकड़ना ।)

रजिया—प्यारे ! (गाती है ।)

गीत ।

आओ बाँधू तुम्हें बाहुके पाशमें, बंधु, आओ हृदयमें जगह तुमको दूँ ।
धरके छातीमें सिर,हो मगन,प्रानधन,आँख मूँदे हुए सुखकी मैं नींद लूँ
लुप्त हो यह सभी विश्व, अनुभव करें दो हृदय आज आनन्दसे प्रेमका ।
उन मिले दो हृदयका मधुर गीत मैं आँख कुछ बंद कर मस्त होकर सुनूँ
वायु बाहर चले वेगसे, मेघमें वज्र बिजली कड़कती रहे जोरसे ।
चन्द्रमा सूर्य तारा न हो एक भी, घोर तम छा रहे; तुम रहो-मैं रहूँ ॥
हम तुम्हारे हुए,तुम हमारे हुए,मित्र हम तुम हैं,बस सिर्फ यह ख्याल हो
लुप्त संसारमें और सब शेष हो,प्राणप्यारे, तुम्हारा ही मैं दम भरूँ ॥

[गाते गाते रजिया अजितके गले लग जाती है । ठीक इसी समय

मुकुन्ददास प्रवेश

मुकुन्द०—महाराज—(रजियाको अजितके गलेसे लगे हुए देखकर लौटते हैं ।)

अजित०—क्यों मुकुन्ददास, कोई जरूरी खबर है ?

मुकुन्द०—हाँ महाराज, सेनापति दुर्गादास दक्खिनसे आ गये हैं ।

अजित०—कौन ? दुर्गादास आये हैं ? कहाँ हैं ?

मुकुन्द०—बाहर ।

अजित०——चलो ! अच्छा, नहीं, उन्हें यहीं ले आओ ।

मुकुन्द०——जो आज्ञा ।　　　　(प्रस्थान ।)

अजित०——जाओ रजिया, अपने कमरेमें जाओ ।——

(रजिया जाती है ।)

अजित०——दुर्गादास लौट आये? मेरे रक्षक, देशके भरोसा, दुर्गादास लौट आये——तो इससे एक तरहकी प्रसन्नता होनी चाहिए। मगर मेरे मनमें खटकासा क्यों पैदा हुआ? यह कैसी चिन्ता है, जो मेरे चिरसंचित स्नेह, भक्ति और कृतज्ञताके भावको मथकर गँदला बना रही है । नहीं यह बहुत ही अनुचित है ! नहीं, इस भावको——इस प्रवृत्तिको——मनसे दूर होना चाहिए ।

(मुकुन्ददास और शिवसिंह, दोनों सामन्तोंके साथ दुर्गादासका प्रवेश ।)

दुर्गादास०——महाराज, सेवक सेवामें आ गया । कुँअरको (गद्गद स्वरसे) महाराज कहकर प्रणाम करनेकी बहुत दिनोंकी मेरी आशा आज पूरी हुई । महाराज, प्रणाम । (पद-चुम्बन ।)

अजित०——भक्त बन्धु, मेरे प्रियतम सेनापति, कुशल तो हैं?

दुर्गा०——हाँ अभी तक तो कुशल है ।——महाराज, तो आपने स्वयं ही सामन्तोंको दर्शन दिये?

अजित०——हाँ, मैंने आप ही सामन्तोंसे भेंट की ।

मुकुन्द०——(दुर्गादाससे) स्वामी, बहुत दिन तक मैं इसपर राजी नहीं हुआ । मैंने कहा——स्वामीकी आज्ञा बिना महाराजके दर्शन नहीं मिल सकते । पर सामन्तोंने किसी तरह नहीं माना । उन्होंने कहा——हम महाराजके दर्शन करेंगे ।——कुछ न मानेंगे ।

दुर्गा०——चलो अच्छा ही हुआ ।——सब सामन्तोंने महाराजकी यथोचित अभ्यर्थना की थी?

मुकुन्द०—अभ्यर्थना ? बड़े उत्साहसे—बड़ी धूमसे महाराजकी अभ्यर्थना की गई थी। चैत्रकी संक्रान्तिको महाराजने सामन्तोंको दर्शन दिये थे। वहाँपर दुर्जनसाल, उदयसिंह, तेजसिंह, विजयपाल, जगतसिंह, केसरीसिंह और और बहुतसे सामन्त उपस्थित थे। सब महाराजको घेरकर जयध्वनि करने लगे। घर-घर गली-गली उत्सवकी धूम मच गई।—स्वामी, उस दिनका वह दृश्य अपूर्व ही था!

दुर्गा०—अच्छी बात है!—इधर युद्धकी क्या खबर है शिवसिंह?

शिव०—औरंगजेबने मुहम्मदशाहको जसवन्तसिंहका एक पुत्र कहकर जोधपुरके राजाके नामसे खड़ा किया था। वह मर भी गया। जोधा हरनाथने शुजायतखाँको कच्छ तक भगा दिया। महाराज (अजितसिंह) ने खुद अजमेर जाकर सैफीखाँको परास्त किया।

मुकुन्द०—सब अच्छी खबर है सेनापति, किन्तु वीर समरसिंहकी शोचनीय मृत्युसे सब जय फीकी जान पड़ती है।

अजित०—सेनापति, जयसिंहके पुत्र अमरसिंहने अपने पिताके विरुद्ध युद्ध ठाना है। जयसिंहने मारवाड़से सहायता माँगी है। सेनापति, तुम सेना लेकर जयसिंहकी सहायता करने जाओ।

दुर्गा०—जो आज्ञा महाराज। कल सबेरे ही जाऊँगा।—कासिम कहाँ है?

शिव०—वह बीमार है। नहीं तो सबसे पहले आकर वह स्वामीके चरणोंमें प्रणाम करता।

दुर्गा०—बीमार है? क्या बीमारी है? कहाँ है वह?

शिव०—भीतर कोठरीमें सो रहा है। विशेष कुछ नहीं, ज्वर—साधारण ज्वर है।

दुर्गा०—चलो—उसे देख आवें— (सब जाते हैं।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—दक्खिनमें मुगलोंका पडाव ।

समय—प्रातःकाल ।

[औरंगजेब और दिलेरखाँ खड़े हुए बातें कर रहे हैं ।]

औरंग०—दिलेरखाँ, तो अकबर ईरान चला गया ?

दिलेर०— हाँ जहाँपनाह, एक अँगरेजके जहाजपर चढ़कर धुआँ उड़ाते हुए उसी तरफ चले गये ।—वहाँसे—सुन पड़ता है—मक्के शरीफको जायगे ।

औरंग०—(लंबी साँस लेकर) उसकी नसीहत और तालीमके लिए इतनी मेहनत, कोशिश और खर्च सब बेकार हुआ !

दिलेर०—नहीं जनाब, नसीहत और तालीमका तो नतीजा बहुत अच्छा देख पड़ा । अगर ऐसा न होता तो शाहजादेको पछतावा न होता ।

औरंग०—मैं भी मक्के शरीफको जाऊँगा । मैं अपनी जिन्दगीके सब काम कर चुका । सिर्फ एक काम बाकी है । रजियाको दुश्मनोंके हाथसे निकालना । तुम अगर दुर्गादासको छोड़ न देते तो शायद मक्का जानेके पहले यह काम भी मैं कर जा सकता ।

दिलेर०—दुर्गादासको डर दिखाकर ? नहीं जहाँपनाह, यह नहीं हो सकता था । डर किसे कहते हैं, सो वह बहादुर जानता ही नहीं । उस रातको कामबख्शने जब दुर्गादासके सिरपर तलवार तानी थी, तब दुर्गादास इस तरह छाती फुलाकर खड़ा हुआ था जनाब, कि मैं दंग रह गया । उस वक्त जो मैंने देखा उसे मैं कभी नहीं भूल सकता । एकाएक उसका सिर पहाड़की चोटीकी तरह ऊँचा और सीधा हो गया । उसकी छाती आसमानकी तरह चौड़ी हो गई ।—उस बहादुरको इतना ऊँचा, इतना चौड़ा और कभी मैंने नहीं देखा जनाब !

औरंग० - हाँ दिलेरखाँ, दुर्गादास बेशक एक बहादुर और ऊँचे ख़यालातका आदमी है। लेकिन---

दिलेर० जहाँपनाह, मैं देखता हूँ कि फ़र्जके लिए राजपूत सिर्फ मरनेको ही नहीं डरते वे फ़र्जके लिए मरनेमें एक बड़ा फ़ख समझते हैं। और उन राजपूतोंमें सबसे बढ़कर दुर्गादास है।

औरंग०--मैं इस बातको मानता हूँ दिलेरखाँ, तो फिर रानियाँ दुश्मनोंके हाथसे नहीं निकल सकती ?

दिलेर०—यह बात नहीं है जहाँपनाह, मैं इस कामको कर सकता हूँ, अगर हुज़ूर इस मामलेमें मुझे पूरा पूरा अख्तियार दें।

औरंग० - कैसे यह काम करोगे ?

दिलेर० जहाँपनाह, मैं जानता हूँ कि राजपूत जातिसे इस कर इस दुर्गादाससे किस तरह काम निकाला जा सकता है। उसकी इज्जत कीजिए, उसपर यकीन लाइए, तो वह फूलसे भी बढ़कर मुलायम है। उसे डर दिखाते जाइए, धमकाइए तो वह लोहेसे भी कड़ा है।

औरंग- अच्छी बात है। मैं तुमको इस बारेमें पूरे अख्तियारात देता हूँ। मेरा दिमाग सही नहीं है। मैंने समझकी गल्तीसे मौजमको दुश्मन बना लिया, आजिमको लालची बना डाला, अकबरको बागी और कमबख्शको शैतान बना दिया। लेकिन तो भी समझमें कहाँपर गल्ती है, सो कुछ समझमें नहीं आता।

दिलेर०- जनाब, अगर यही मालूम हो जाय कि गल्ती कहाँपर है, तो फिर गल्ती रहे ही क्यों ?

[काबलेसखाका प्रवेश।]

औरंग०- क्या है काबलेसखाँ ?

काबलेस०--हुज़ूर, संभाजीको गधेकी पीठपर चढ़ाकर शहरभरमें घुमाया जा चुका। काफ़िर रास्तेमें चिल्लाचिल्लाकर कहता था

कि 'मुझे कोई मार डालो।' लेकिन किसीकी हिम्मत नहीं पड़ी। उसे अब यहाँ ले आऊँ खुदावन्द?

औरंग०—ले आओ।

काबलेस०—मेरा इनाम खुदावन्द?

औरंग०—दूँगा काबलेस, दूँगा, खूब इनाम दूँगा।

(सलाम करके काबलेसखाका प्रस्थान।)

औरंग०—दिलेरखाँ, अब मुझे जिन्दगीसे नफरतसी हो गई है। मेरी खुशी जाती रही है। मेरी कमर जैसे टूट गई है। (थोड़ी देर चुप रहकर) जिसे कभी सोचा न था मेरी बेगम हिंदोस्तानके बादशाहकी बेगम उसे मैंने क्या नहीं दिया था! उसका यह हाल! दिलेरखाँ, मैंने कभी ख्वाबमें भी यह नहीं सोचा था।

दिलेर०—जहाँपनाह, मैं बराबर यही देखता आ रहा हूँ कि आदमी जिस बातको कभी नहीं सोचता, वही सबसे पहले आगे आती है।

[पिंजड़ेमें बंद संभाजीको साथ लिये आजिम, काबलसखाँ और सिपाहियोका प्रवेश।]

औरंग०—यही मराठा बहादुर है? क्यों महाराज, कुरानको और बुरा कहोगे? मसजिदोंको तोड़ोगे और नापाक करोगे? मुल्लाओंकी बेइज्जती करोगे?—जवाब क्यों नहीं देते?

काबलेस०—हुजूर, यह जवाब किस तरह दे? कुरानको यह बुरा कहता था, इस लिए इसकी जबान काट ली गई है।

औरंग०—मराठे बहादुर, अब भी बता, कुरान-कल्मा पढ़ेगा? अगर अब भी यह मंजूर कर, तो मैं तेरी जान बख्श सकता हूँ।

(संभाजी औरंगजेबके उद्देश्यसे पिंजड़ेके घेरेमें लात मारते है।)

काबलेस०—हुजूर, अबकी लातमें पिंजड़ा टूट जायगा। जहाँपनाह, जल्द इसके कत्लका हुक्म दीजिए। नहीं तो—

औरंग०—जाओ, अभी इसका कटा हुआ सिर मेरे सामने पेश करो।

(सम्भाजीको लेकर आजिम, काबलेसखाँ और सिपाहियोंका प्रस्थान ।)

औरंग०— दिलेरखाँ, सन्नाटेमें क्यों आ गये ?—बोलते क्यों नहीं ?

दिलेर०—इसके ऊपर अब मुझे कुछ नहीं कहना है । बहादुरके साथ बहादुरको शायद ऐसा ही बर्ताव करना चाहिए ?

औरंग०—संभाजी अगर कल्मा पढ़नेपर राजी हो जाता, तो मैं उसको माफ कर देता ।

दिलेर०—अगर संभाजी इस वक्त मौतके डरसे कल्मा पढ़नेपर राजी हो जाते, तो मैं उनसे नफरत करता ।—जनाब, आप क्या यह चाहते हैं कि कोई अपनी समझ और यकीनके खिलाफ दीन-इसलामको माने ?

औरंग०—दिलेरखाँ, इस दीन-इसलामको फैलानेके लिए ही मैं इस तख्तपर बैठा हूँ । इसीके लिए बापको कैदखानेमें बंद किया, भाईका खून अपने सिर लिया । खुदा जानता है ।

दिलेर०—यह मैं जानता हूँ। जनाब, मैं आपको मजहबके बारेमें कट्टर मुसलमान समझकर ही अबतक आपका साथ दे रहा हूँ । अगर आपको मजहबकी आड़में मनमानी करनेवाला मक्कार समझता, तो अबसे बहुत दिन पहले बन्दा बन्दगी करके चल देता ।—लेकिन बादशाह सलामत, कहीं सीनेजोरीसे मजहब बढ़ सकता है ? तलवारकी धारसे दीनपर यकीन दिलाया जा सकता है ? ठोकरें मारकर रिआया माफिक की जा सकती है ? जहाँपनाह, मैं फिर कहता हूँ—इस रास्तेसे लौटिए । अब भी हिन्दुओंकी मुखालफत छोड़िए । हिन्दू और मुसलमानोंके दिल मिलें, मन्दिरों और मसजिदोंमें आजादीके साथ लोग परमेश्वर और खुदाका नाम लें । एक साथ आसमानमें अजाँ और शंखकी आवाज गूँज उठे । हिन्दू और मुसलमान एक दफा कौमी दुश्मनी भूलकर—एक दूसरेको भाई समझकर—गले लग जावें ।

उसी दिन हिन्दोस्तानमें एक छोरसे दूसरे छोरतक ऐसी एक बादशाहत कायम हो जायगी, जैसी दुनियाभरमें कभी किसीने नहीं देखी ।

औरंग०—हिन्दू और मुसलमान एक होंगे दिलेरखाँ ?

दिलेर०—क्यों न होंगे हुजूर ? वे इतने दिनोंसे एक ही आसमानके नीचे रहते हैं, एक ही जमीनसे पैदा हुआ नाज वगैरह खाते हैं, एक ही जमीनका पानी पीते हैं, एक ही हवा उनके बदनमें लगती है ।—अब भी क्या दोनोंके प्राण—दोनोंकी रूह—एक नहीं हुई ? मैं चाहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों मजहब, कौम और रस्मरवाजके फर्कको भूलकर, घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, एतकाद और भक्तिके साथ, इस हिन्दोस्तानकी हरीभरी धरतीकी जयजयकारसे आसमानको गुँजा देवें !—उनके दिलोंमें यह ख्याल पैदा हो कि यह हिन्दोस्तान हमारी मा है, और हम हिन्दू-मुसलमान एक माके दो लड़के—भाई-भाई—हैं !

औरंग०—दिलेरखाँ, तुम सपना देख रहे हो ।

दिलेरखाँ—मुझे माफ करें जहाँपनाह ।—शायद मैं सपना ही देख रहा था । लेकिन बड़े सुखका सपना था ।—

औरंग०—(स्वगत) यही अगर होता । यही अगर हो सकता।—नहीं, बहुत ज्यादह देर हो गई। अब इस उम्रमें एक और नये मनसूबेको लेकर कामके मैदानमें उतरना नहीं बन सकता। (प्रकट) दिलेरखाँ, मैं क्या कर रहा हूँ, सो खुद मेरी ही समझमें नहीं आता । मैं 'कल' की तरह काम किये चला जा रहा हूँ । सोचने नहीं पाता। मेरी आँखोंके आगे जैसे अँधेरा छाया हुआ है । सिर चकरा रहा है। दिलेरखाँ, अब मैं वह औरंगजेब नहीं रहा, मैं उसका सिर्फ ढाँचा हूँ ।

दिलेर०—अभी कुछ देर है जनाब, अभी उस ढाँचेपर गोस्त लटक रहा है; गिर नहीं पड़ा। पर हाँ, वैसा होनेमें बहुत देर भी नहीं है ।

[इसी समय काबलेसखाँ एक चाँदीकी तश्तरीमें संभाजीका कटा हुआ सिर लाकर बादशाहके पैरोंके पास रखता है। साथमें रुधिरसे तर आजिम और सिपाही हैं।]

औरंग०——संभाजीका सिर है!——जाओ, ले जाओ।

दिलेर०——दाराके खूनसे जो सल्तनत शुरू हुई थी, वह इस बहादुरके खूनसे खतम हुई समझो! (प्रस्थान)

काबलेस०——जहाँपनाह, मेरा इनाम?

औरंग०——तेरा इनाम? अरे कौन——(पहरेदारोंसे) इसे बाँधो।

काबलेस०——ऐं——मुझे——

(पहरेदार सिपाही काबलेसखाँको बाँधते हैं।)

औरंग०——आजिम, इसे बाहर ले जाओ——इसका सिर काटकर ले आओ। काबलेसखाँ, यह जरूर है कि हम लोगोंको अक्सर तुझ जैसे दगाबाजोंकी मदद लेनेके लिए लाचार होना पड़ता है। लेकिन दिलसे मैं तुझ ऐसे लोगोंसे नफरत ही रखता हूँ——जा, जहाँ तेरा मालिक संभाजी गया है।

काबलेस०——जहाँपनाह!

औरंग०——जाओ, ले जाओ। (प्रस्थान)

आजिम०——चल कुत्ते!

काबलेस०——दोहाई है शाहजादा साहब, मुझे जानसे न मारिए। मैं आपका गुलाम होकर रहूँगा——आपका——

आजिम——चल नमकहराम——(लात मारता है)

काबलेस०——मारिए——जूते मारिए——लातें मारिए——और फिर मारकर निकाल दीजिए——पर जानसे न मारिए——दोहाई है!

———

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—जोधपुरका महल ।

समय—रात्रि ।

[अजितसिंह और श्यामसिंह ।]

श्याम०—तो महाराजने राणाकी भतीजीसे ब्याह किया है ?

अजित०—हाँ राजा साहब सेनापति दुर्गादास हालमें उदयपुर गये थे । वही वहाँसे इस ब्याहका प्रस्ताव लेकर आये । मैंने उसे स्वीकार कर लिया ।

श्याम०—महाराज, यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज फिरसे मेवाड़ और मारवाड़के घराने मिल गये । मैंने सुना है, गजसिंहकी लड़की भी बड़ी सुन्दर है ।

अजित०—लेकिन कठपुतली है । उसकी अवस्था बहुत ही कम है ।

श्याम०—इस काठकी पुतलीपर ही एक दिन खून-माँस चढ़ आवेगा । उसे कुछ सिखाना या समझाना न होगा महाराज !

अजित०—वह बात करना भी नहीं जानती ।

श्याम०—जानेगी महाराज, समयपर सब सीख जायगी । औरतें तोतेकी तरह होती हैं—सीताराम पढ़ाइए, उसे भी पढ़ेंगी; राधाकृष्ण पढ़ाइए उसे भी पढ़ेंगी ।—महाराज, मैंने सुना है कि राणा जयसिंहने अपनी छोटी रानीको छोड़ दिया । क्या यह सच है ?

अजित०—हाँ राजा साहब, उन्होंने छोटी रानीका महीना बाँध दिया है।

[दुर्गादासका प्रवेश ।]

श्याम०—क्यों दुर्गादास, शाहजादी कहाँ है ?

दुर्गा०—मैंने उसे सेनापति शुजायतखाँको सौंप दिया । आपको सौंपनेकी अपेक्षा उन्हें सौंपना ही मैंने अच्छा समझा ।

श्याम०—क्या मुझपर आपको विश्वास नहीं हुआ ?

दुर्गा०—महाराज, सच तो यही है कि मैं आपपर पूरी तौरसे विश्वास नहीं कर सका। किन्तु बात एक ही है। बादशाहके पास शाहजादीको आप न ले गये, शुजायतखाँ ही ले गये।

श्याम०—हाँ—हाँ—सो अच्छा ही किया। शाहजादीको वे ले गये तो भी वही बात हुई, और ले जाता तो भी वही बात होती।

अजित०—शाहजादी? कौन शाहजादी दुर्गादास?

दुर्गा०—अकबरशाहकी लड़की रजिया। उसके बदलेमें मैंने मारवाड़राज्यके लिए बादशाहसे युद्ध किये बिना ही तीन नगर प्राप्त किये हैं।

अजित०—क्या दुर्गादास! तुम क्या यह कहना चाहते हो दुर्गादास, कि तुमने मेरी—तुमने रजियाको मुगलोंके हाथ लौटा दिया?

दुर्गा०—हाँ महाराज, उसे मैंने लौटा दिया।

अजित०—(दमभर चुप रहकर) रजियाको लौटा देनेका तुम्हें अधिकार क्या था सेनापति? राजा मैं हूँ, मेरी आज्ञा लिये विना—

श्याम०—मैंने भी सेनापतिसे यही कहा था महाराज, कि महाराजकी अनुमति लिये विना—

अजित०—तो बीकानेर-नरेश, तुम भी इस कुचक्रमें हो?

दुर्गा०—आज्ञा मैंने इसलिए नहीं ली महाराज कि आज्ञा माँगनेसे मिलती नहीं।—और अकबर और उनके परिवारने मेरा आश्रय लिया था; महाराजका आश्रय नहीं लिया था।

अजित०—तुम्हारी इतनी मजाल दुर्गादास!—तुमने सोचा—(क्रोधके मारे गला रुँध जाता है।)

दुर्गा०—सुनिए महाराज, स्पष्ट ही कहता हूँ। मुझे मालूम हुआ कि आप शाहजादीको चाहने लगे हैं। जिस दिन मैं दक्खिनसे लौटकर यहाँ आया था, उसी दिन मुकुन्ददासने यह बात मुझसे कही थी।

उसके बाद मैंने खुद भी देखा कि यह बात सच है। यह प्रेम किसीके लिए अच्छा न था। क्योंकि आपका शाहजादीके साथ ब्याह हो नहीं सकता। इसीसे मैंने उदयपुरमें आपके ब्याहका प्रस्ताव किया। वहीं इन बीकानेर-नरेशने शाहजादीको लौटा देनेका प्रस्ताव किया। मैं उसपर राजी हो गया।

अजित०---राजी हो गये ? जान पड़ता है, खूब रिश्वत ली है सेनापति !—

दुर्गा०—रिश्वत महाराज ? अगर रिश्वत लेता—नहीं, क्षमा कीजिएगा महाराज, मैं अनुचित बात कहनेवाला था।

अजित०—क्षमा ! दुर्गादास, इस रिश्वत लेनेके अपराधके कारण मैं तुमको सदाके लिए मारवाड़से निकल जानेकी आज्ञा देता हूँ।

दुर्गा०—जो आज्ञा महाराज, प्रणाम। (प्रस्थान)

अजित०—षड्यन्त्र—षड्यन्त्र—एक भारी षड्यन्त्र रचा गया है।

श्याम०—महाराज, पहले ही कह चुका हूँ कि मैं इस षड्-यन्त्रमें—इस साजिशमें नहीं हूँ।

अजित०—दूर हो।—(लात मारकर श्यामसिंहको निकाल देते हैं)—रजिया, तो तुम गईं, सदाके लिए मेरे हाथसे गईं ! और तुम्हारे लिए मैंने दुर्गादासको भी हाथसे खोया !

(बेचैनीके साथ टहलना।)

[तेजीके साथ कासिमका प्रवेश।]

कासिम—राजा, महाराज दुर्गादास कहाँ हैं ?

अजित०—इस राज्यको छोड़कर चले गये।

कासिम—वे खुद चले गये, या तुमने उनको निकाल दिया ?—श्यामसिंहसे जो मैंने सुना वह सच है ?

अजित०—हाँ, मैंने उनको देशनिकालेका दण्ड दिया है।

कासिम—यह तो मालूम हुआ, लेकिन क्यों ?

अजित०—रिश्वत—घूस लेनेके कारण।

कासिम—(क्रोधसे काँपते हुए स्वरमें) घूस ! रिश्वत !—महाराज दुर्गादासने घूस ली है !—भला रे भला ! तूने यह बात तो कही ! दुर्गादासने घूस ली है ! दुर्गादास अगर घूस लेते तो क्या तेरे ऐसे एक महाराज न बन जाते? वे चाहते तो तुझे पैरोंसे ठेलकर जोधपुरके सिंहासनपर राजा होकर बैठ सकते थे। दुर्गादास घूस लेंगे? हाँ रे नमकहराम !—एहसानफरामोश ! जिन्होंने अपना जी होमकर इतने दिन तक तेरी हिफाजत की—जान बचाई—पचीस बरसतक जो मुल्कके लिए लड़ते रहे, उन्हींको बुढ़ापेमें तूने निकाल दिया? अब वह पराये दरवाजेपर भीख माँगकर—नौकरी करके—खायँगे, यही तेरा धरम था राजा?

अजित०—काका—

कासिम—खबरदार, अब मुझे काका कहकर न पुकारना। मैं ऐसे एहसानफरामोशका काका नहीं बनना चाहता—मैं अब तेरी दी हुई रोटी खाना नहीं चाहता। मैं भी जाऊँगा। मेहनत-मजूरी करके खाऊँगा। भीख माँगकर अपने महाराज दुर्गादासको खिलाऊँगा। उनकी कदर तू क्या जानेगा एहसानफरामोश ! (प्रस्थान)

(अजितका चुपचाप दूसरी तरफसे प्रस्थान।)

छठा दृश्य।

स्थान—औरंगाबाद। शाहीमहल। दो-मंजिला।

समय—तीसरा पहर।

[गुलनार अकेली खड़ी है। सामने बादशाहका नौकर है।]

गुलनार—क्या बादशाहने कहा कि फुर्सत नहीं है?

नौकर—हाँ बेगम साहब, बादशाह सलामत मक्के शरीफ जानेकी तैयारी कर रहे हैं। यहाँ आनेकी उन्हें फुर्सत नहीं है।

गुलनार—अच्छा जाओ । (नौकरका प्रस्थान) यहाँतक ! मैंने बादशाहसे कहा, मेरे लड़केको बीजापुर न भेजिए । जवाब आया, उसे जाना ही होगा । बादशाहको बुला भेजा । जवाब मिला, फुर्सत नहीं है । हूँ ! इन्सानकी जब तनज्जुली होती है तब ऐसा ही होता है ! वक्तने पलटा खाया है । लेकिन आज मैंने यह बात चुपचाप सुन ली ? तअज्जुब ! मैं क्या वही गुलनार हूँ ? यकीन नहीं आता । देखूँ (आईनेके पास जाकर) यह क्या ! सचमुच मैं अब वह गुलनार नहीं रही । आँखें गढ़ेमें चली गई हैं, गाल बैठ गये हैं, बाल पक गये हैं । अब मैं वह गुलनार नहीं हूँ !—मैं कौन हूँ ? (चिल्लाकर) मैं कौन हूँ ?

[रजियाका प्रवेश ।]

रजिया—बेगम साहब !

गुलनार— कौन ? रजिया, क्या कहकर पुकारा ? बेगम साहब ? तो मैं बादशाहकी बेगम हूँ ? तो मैं वही गुलनार हूँ ?

रजिया—अम्मीजान—

गुलनार—रजिया, मुझे अच्छी तरह देख और सच सच कह—मैं वही गुलनार हूँ कि नहीं ?

रजिया—अम्मीजान, मालूम नहीं, तुम वही गुलनार हो या नहीं। लेकिन तुम मेरी वही अम्मीजान जरूर हो ।

गुलनार—तू सच कहती है रजिया ? मैं पहचान पड़ती हूँ । सच कह, पहचान पड़ती हूँ ? वह एक दिन था, जब तूने मुझे हिन्दोस्तानके बादशाहकी बेगम गुलनार देखा था—हिन्दोस्तानका बादशाह जिसकी एक प्यारकी नजरके लिए मुन्तजिर रहता था; सैकड़ों राजे जिसकी त्यौरीपर बल पड़नेको खौफके साथ दूरसे देखा करते थे, हाथमें नंगी तलवार लिये लाखों सिपाही जिसकी उँगलीके इशारेपर

मरने मारनेके लिए तैयार रहते थे। और आज मैं इस हालतमें हूँ!—बादशाह नफरतकी निगाहसे देखते हैं, फर्माबरदार लोग बात करनेके रवादार नहीं हैं, सारी दुनियाने छोड़ दिया है। क्या मैं वही गुलनार हूँ? अच्छी तरह देखकर बतला।

रजिया—अम्मीजान, तुम मेरी वही अम्मीजान हो। दुनिया तुमको छोड़ दे, लेकिन मैं तुमको नहीं छोड़ सकती।

गुलनार—क्यों रजिया, मैंने तेरे साथ कब क्या सलूक किया है?

रजिया—तुमने कुछ सलूक नहीं किया, यह सच है। लेकिन तो भी मैं तुमको नहीं छोड़ सकती। क्योंकि हम दोनों एक ही तरहके दुखसे दुखी हैं। मैं भी बदनसीब हूँ—मैं भी एक आदमीकी चाहमें फँस चुकी हूँ।

गुलनार—तूने किसे चाहा था? किसे रजिया? लेकिन क्या मेरी तरह चाहा था? मेरी तरह इश्ककी तेज भूसीकी आगमें जल चुकी है? एक सल्तनत उसके लिए अपने हाथसे गवाँ दी है? और फिर उससे कोई जवाब पाया है?—नहीं रजिया, तू इस जलनका शुमार भी नहीं कर सकती।—उसी दिनसे मेरा सब हुस्न और घमंड मिट गया है। आज जिसे तू देख रही है वह गुलनार नहीं है; उसका ढाँचा है। अब मैं वह गुलनार नहीं हूँ।

[बाँदीका प्रवेश]

बाँदी—शाहजादी, चलिए।

रजिया—ठहर जा, थोड़ी देरमें चलती हूँ।

बाँदी—नहीं शाहजादी, बादशाहका हुक्म नहीं है।

गुलनार—क्या हुक्म नहीं है बाँदी?

बाँदी—शाहजादीको यहाँ आने देनेका। (रजियासे) चलिए।

(रजिया आँखोंमें आँसू भरे हुए गुलनारकी तरफ देखती है।)

गुलनार०—(रजियासे) जाओ।—(रजियाका प्रस्थान)मैं आज इतनी नाचीज हो गई हूँ! अपनी पोतीसे बात करना भी मेरे लिये मना है! एक बाँदी भी लाल-पीली आँखें दिखाकर चली जाती है! नौकर-चाकरोंकी भी नफरत बर्दाश्त करके गुलनार इस शाहीमहलके कोनेमें नहीं पड़ी रह सकती! मल्का होकर शाहीमहलमें आई थी और उसी हैसियतमें यहासे जायँगी।

[नीचे सड़कपर कुछ फकीर आकर गाते हैं।]

गीत।

जिन्दगी तो देख ली हसरतकी कसरत है अजब।
गर हो हिम्मत कुछ तो चल तू मौतको भी देख अब॥
यह भरा लहरा रहा गहरा समुद्र अपार है।
तैरते हैं सब पड़े उसमें, मगर हैं खुश्क लब॥
हाथ पैर हजार मारें, पार पर मिलना नहीं।
डूबना मँझधारमें होगा थकेंगे अंग जब॥
इसके ऊपर उठ रहीं लहरें गरजती वेगसे।
और नीचे है अगम पानी परेशानी अजब॥
इतने दिन तैरा किया लहरोंमें ऊपर तू अरे।
देख नीचे डूबकर कितना कहाँ पानी है अब॥

गुलनार– ठीक है। आज गोता लगाकर देखूँ नीचे कितना गहरा पानी है। बस, यही ठीक है। डर काहेका? यही अच्छा है। आज खुदकुशी करूँगी।

[कामबख्शका प्रवेश]

कामबख्श—अम्मी, मैं बीजापुर जाता हूँ। अब्बाजानका हुक्म है।

गुलनार—हाँ सुना है। तुम्हारे अब्बाजानका हुक्म है, मैं रोकनेवाली कौन हूँ! जाओ। (कामबख्श गुलनारके पैर छूता है, गुलनार सिर्फ सिर झुका लेती है) कामबख्श, बेटा, बस यही मेरी तेरी आखिरी मुलाकात है!

कामबख्श—क्यों अम्मीजान ?

गुलनार—क्यों ? इस लिए कि मैं मरूँगी—मैं मरूँगी—मैं खुदकुशी करूँगी !

काम०—यह क्या कह रही हो अम्मीजान ? मैं जानता हूँ कि तुम्हारी तबियत कुछ दिनसे बहुत खराब हो रही है। लेकिन—

गुलनार—क्यों मरूँगी ? जानना चाहते हो ? तो सुनो। जबतक मैं बादशाहकी प्यारी बेगम थी—तबतक जिन्दा रही ! जबतक मैं हुकूमत करती रही—जिन्दा रही ! जबतक शानके साथ सिर ऊँचा किये रह सकी—जिन्दा रही !—आज बादशाहकी नफरत, नौकरोंकी बदमिजाजी, लड़के-पोतोंका तरस और दिलकी बेकरारी लेकर गुलनार इस दुनियामें रहना नहीं चाहती।

काम०—फिर वह दिन अल्लाह दिखावेगा अम्मीजान, अब्बाजानसे माफी माँग लो।

गुलनार—क्या कामबख्श ? माफी ? मैं माफी माँगूगी ?—तू मेरा लड़का है ?—कामबख्श, सूरज जिस शानसे निकलता है उसी शानसे डूबता है।—जाओ—लेकिन लौटकर अपनी अम्मीको न देखोगे।

काम०—अम्मीजान—

गुलनार०—चुप ! बस अब कुछ न कहना। मैंने पक्का इरादा कर लिया है। जाओ, बस हम दोनोंकी यही आखिरी मुलाकात है।—(सिर झुकाकर धीरे धीरे कामबख्शका प्रस्थान) सूरज डूबनेमें अब ज्यादह देर नहीं है। बाँदी !—नहीं, कोई नहीं है। एक बाँदी भी आज मेरे हुक्मके इन्तिजारमें यहाँ मौजूद नहीं है ! आज मैं बाँदियोंसे भी बदतर हो गई हूँ !—गया, सब गया—मेरी शान, इज्जत और दबदबा सब गया। मैं भी जाती हूँ।

(प्रस्थान)

[दमभरमें एक बाँदीके साथ औरंगजेबका प्रवेश ।]

औरंग०—कहाँ है बेगम ?

बाँदी—मालूम नहीं जहाँपनाह, यहींपर तो अभी थीं। जान पड़ता है, भीतर गईं ।

औरंग०—जा खबर दे । (बाँदीका प्रस्थान) दुर्गादास, मैं तुमसे जंगमें हार चुका हूँ, लेकिन यह हार उससे कहीं बढ़कर है। तुमने गुलनार ऐसी हसीन औरतको मुट्ठीमें पाकर भी छोड़ दिया—गुलनार ऐसी मल्काकी मोहब्बतका दम भरनेसे साफ इनकार कर दिया। बेशक, तुम एक महात्मा हो! दिलेरखाँके कहनेसे और तुम्हारी इज्जत करनेके खयालसे, आज मैं गुलनारको माफ कर दूँगा। सच बात है, दिलेरखाँका कहना ठीक है—मके शरीफको जानेके वक्त एक बिगड़े-दिल ढीठ औरतपर गुस्सा रखना मुनासिब नहीं ।

[खूब शृंगार किये हुए गुलनारका प्रवेश ।]

गुलनार—कौन ? क्या बादशाह ? इतनी मेहरबानी ?

औरंग०—मल्का !

गुलनार—चुप । अब मैं मल्का या बेगम नहीं रही। जब तक हुक्म चलाती रही, तब तक मल्का थी । अब आज मैं मल्का नहीं हूँ। मैं सिर्फ गुलनार हूँ ।—क्या कहना है, कहो ।

औरंग०—यह क्या गुलनार ! इसी बीचमें इतनी तबदीली ! यह क्या ! तुम तो पहचान नहीं पड़तीं !

गुलनार—बादशाह! मेरे उरूजके साथ मेरा हुस्न भी चला गया—मिट्टीमें मिल गया । अब मेरे पास किस इरादेसे आये हो ? बोलो। ज्यादह वक्त नहीं है। मैं मरने जा रही हूँ। मैं जहरका प्याला पी चुकी हूँ !

औरंग०—यह क्या ! जहर पी लिया है गुलनार ? किस लिए ?

गुलनार—किस लिए ? पूछते हो ? बुड्ढे लटे हुए औरंगजेब, तुम क्या समझे थे कि मैं हेच होकर तुम्हारी नफरतको बर्दाश्त करनेके लिए जिन्दा रहूँगी ? तुमने क्या सोचा था कि मैं तुमसे रहमकी भीख माँगकर जिन्दा रहूँगी ?—इस सूरजकी तरफ देखो, उसके बाद मेरी तरफ देखो, फिर बतलाओ कि हम दोनों भाई-बहन जान पड़ते हैं या नहीं ? मैं भी मल्का होकर आसमानपर चढ़ी थी, और आज ग़रूब होने जा रही हूँ।

औरंग०—गुलनार, मैं इस वक्त तुमको माफ करनेके लिए आया हूँ। मैंने तुमसे जो कुछ ले लिया था वह फिर देने आया हूँ।

गुलनार—माफी ?

औरंग०—हाँ, अब मैं तुमको प्यार नहीं कर सकता। गुलनार, तुम नहीं जानती कि तुमने मुझको कैसी चोट पहुँचाई है ! दमभरमें तुमने मेरी मोहब्बत, एतबार और उम्मीदोंको बेदर्दीके साथ टुकड़े टुकड़े कर डाला है। जवानीमें इन चीजोंके टूटने पर जोड़ लग सकता है; लेकिन बुढ़ापेमें जो टूटता है वह फिर जुड़ नहीं सकता। मेरा सब मिट गया। मैं भी मरने जा रहा हूँ। इस वक्त मैं तुमसे मोहब्बत नहीं कर सकता। वह ताकत मुझमें नहीं रही। लेकिन हाँ, माफ कर सकता हूँ।

गुलनार—माफ !—बादशाह, तुम मुझे माफ करोगे ?

औरंग०—नीच-कौमके लोग बदमाश औरतको मारते पीटते हैं, या मार ही डालते हैं। मामूली पढ़े-लिखे लोग उसे छोड़ देते हैं। बड़े लोग—ऊँचे दर्जेके आदमी उसे माफ कर देते हैं।

गुलनार—(व्यंगके स्वरमें) बेशक तुम बहुत ही ऊँचे दर्जेके आदमी हो ! लेकिन बादशाह, गुलनारने न कभी किसीको माफ किया और न वह किसीसे माफी चाहती है !

औरंग०—तुम गलत समझी हो गुलनार, मैं ऊँचे दर्जेका आदमी नहीं हूँ। ऊँचे दर्जेका आदमी दिलेरखाँ है। मैं तो इस वक्त 'कल' की तरह सब काम कर रहा हूँ। दिलेरखाँने मुझसे तुमको माफ कर देनेके लिए कहा है। इसीसे मैं उसका कहना—

गुलनार—दिलेरखाँके कहनेसे ? जाओ बादशाह, तुम्हारी माफी मैं नहीं चाहती। मैं दोजखकी आगमें जलने जा रही हूँ और साथ ही दुर्गादासकी बेहद बेशुमार चाह लिये जा रही हूँ। अगर उसे पाती, तो मैं उसको बादलके टुकड़ेकी तरह, अपनी चाहतकी आँधीसे घेरकर, खींचकर, अपने साथ ले जाती—उसको भूसीकी आगकी तरह ख्वाहिशकी आगमें धीरे धीरे जलाती। वह मिला नहीं। लेकिन शायद एक दिन कहीं मिलेगा। तब उसे देख लूँगी। औरंगजेब, दुनियामें कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी चाहत कोनेकी तरह—इन्तिकामकी तरह जबरदस्त, तेज, आगसे भरी होती है। मैं वैसी ही औरत हूँ।—मेरा सिर घूम रहा है, अब बोला नहीं जाता, मैं मरती हूँ। मुझे कुछ दुख नहीं है औरंगजेब, मुझे अपने गिरनेका दुख नहीं है। ऊपर चढ़ी थी—गिर पड़ी। जो लोग पड़े रहते हैं, वे गिर नहीं सकते। कुछ गम नहीं। अगर औरत होकर पैदा हुई थी तो मर्दको अपनी मुट्ठीमें रक्खा। अगर मल्का हुई थी तो सल्तनतपर हुकूमत की, अगर किसीको चाहा भी, तो उसे ही अपनी उल्फत बख्शी। उससे मोहब्बतकी भीख नहीं माँगी।—कुछ गम नहीं। एक दिन तो मरना होगा। फिर हाथ-पैर चलते ही क्यों न मर जाऊँ ?—वह सूरज डूब गया—मैं भी जाती हूँ।

(गिर पड़ती है।)

औरंग०—जाओ गुलनार, अपने गुनाहोंपर पछताते हुए तुम नहीं मरीं। शायद मौतके उस किनारे पहुँचनेपर तुम्हारा पछताना शुरू होगा। लेकिन मैं तो मरनेसे पहले ही अपने आमालोंपर पछताने लगा हूँ।

सातवाँ दृश्य।



स्थान—आगरेका महल। नीचे यमुना बह रही है।

समय—सायंकाल।

[दिलेरखाँ और एक बादशाही नौकर]

नौकर—बादशाहकी मौत हो गई।

दिलेर०—हाँ मुबारक, वह मौत बहुत ही दर्दनाक थी। देखकर तरस आता था। उनके पास न कोई शाहजादा था—बेगम भी न थीं।—अकेला मैं था। बड़ी ही दर्दनाक मौत थी।

नौकर—वे मक्के शरीफ जानेवाले थे न?

दिलेर०—हाँ। लेकिन जा नहीं सके। दौलताबादमें ही मर गये। अफसोस करने लायक उस मौतको मैं कभी न भूलूँगा। अपने आमालोंपर अफसोस करते हुए बादशाहका लेटे लेटे "माफ करो मराठे, माफ करो राजपूतो, माफ करो पठानो" कहकर चिल्लाना सुननेसे जैसे छाती फटी जाती थी। उसके बाद मरनेसे दमभर पहले भर्राई हुई टूटी-फूटी आवाजमें बादशाहने कहा—" वह सामने मौतका काला दरिया लहरा रहा है, उसीमें अपनी जिन्दगीकी किश्ती छोड़ता हूँ।" आखिरको "अल्ला हो" कहकर चिल्ला उठे—सब खतम हो गया।

नौकर—बेशक अफसोसके लायक मौत थी।—माळूम नहीं, अब कौन बादशाह होगा।

दिलेर०—मौजम और आजिममें लड़ाई छिड़ गई है। नतीजा क्या होगा सो खुदा जाने।

नौकर—आप शाहजादी रजियाको यहाँ ले आये हैं?

दिलेर०—हाँ मुबारक। आज शाहजादीके न बाप है न मा है—कोई नहीं है। उसके बराबर दुखिया और कौन है? यहाँ उसे एक बूढ़ी अन्नाके पास छोड़े जाता हूँ।

नौकर—आप कहाँ जायँगे ?

दिलेर०—मैं दुर्गादासका पता लगाने जाऊँगा।

नौकर—क्यों ?

दिलेर०—मतलब है। (दोनोंका प्रस्थान)

[पागलोंकी तरह धीरे धीरे रजियाका प्रवेश]

रजिया—मैं उसे प्यार करती थी। इसमें क्या बेजा था ? किसने हमको जुदा कर दिया ? क्यों ऐसा किया ?—हमारा सुख वे देख न सके। [बाँदीका प्रवेश]

बाँदी—शाहजादी—

रजिया—(अनसुनी करके) उस दिन पहले पहले आबू-पहाड़के गढ़में, छिटकी हुई चाँदनीमें, क्यों हमारी मुलाकात हुई—क्यों हमारी मुलाकात हुई अजित !

बाँदी—फिर बुदबुदाने लगीं। शाहजादी ! ओ शाहजादी !

रजिया—अजित ! अजित !—उसका नाम भी मीठा है ! अजित !

बाँदी—शाहजादियोंके ढंग ही निराले होते हैं। मैं जाती हूँ। वह इस घड़ी बोलेंगी ही नहीं। (प्रस्थान)

रजिया—शाम हो गई। ठंडी हवा चल रही है। कोयल बोल रही है। जमना महलके नीचेसे बही चली जा रही है। आसमान कैसा साफ कैसा नीला है ! (गाती है)—

गीत।

रही न सुखकी बहार ही जब तो फिर ये बुलबुल है गा रही क्यों
हवा भी ठंडी ये खुशबू लेकर जला रही मुझको आ रही क्यों ?
जो तान थी गूँजती जहाँमें वो आज चुप हो रुला रही क्यों ?
न आँखमें रोशनी न जाँ है, ऐ मौत, मुझको जिला रही क्यों ?

आठवाँ दृश्य ।



स्थान—पेशोला झीलके किनारेका राजमहल ।

समय—दोपहर ।

[दुर्गादास अकेले खड़े हुए सामनेका दृश्य देख रहे हैं ।]

दुर्गा०—(स्वगत) सब चेष्टा व्यर्थ हुई । इस जातिको खींचकर खड़ा नहीं कर सका । यह जरूर है कि मुगलोंका साम्राज्य नहीं रहेगा, लेकिन यह जाति भी उठकर खड़ी नहीं होगी ।

सर०—भीतर चलिए देव, जलपान करिए । दोपहरी ढल चुकी है ।

दुर्गा०—चलता हूँ । चलिए महारानी !

जय०—यहाँ आपको किसी तरहका कष्ट तो नहीं है ?

दुर्गा०—कष्ट ? राना साहबके यहाँ मैं बड़े सुखमें हूँ ।

जय०—मेरे यहाँ न कहिए, सरस्वतीके यहाँ कहिए । सरस्वतीने ही आपके लिए यह जगह पसन्द कर दी है । सरस्वतीने ही यह शीशमहल आपके लिए बनवाया है । जिस दिन आपने हमारे यहाँ पधारकर एक निर्जन स्थानमें रहनेकी इच्छा प्रकट की थी, उसी दिन सरस्वती खुद यहाँ आकर सब बन्दोबस्त कर गई है । यहाँ नित्य वह अपने हाथसे आपके लिए रसोई बनाती है ।

दुर्गा०—महारानीकी मुझपर असीम कृपा है ।

सर०—कृपा ? कृपा न कहिए देव, यह दीनका अर्घ्य है—भक्तका नैवेद्य है । राजस्थानमें ऐसा कौन है, राठौर वीर दुर्गादासके नामको सुनकर जिसकी छाती फूल न जाती हो; गर्वसे सिर ऊँचा न हो जाता हो ? सौभाग्यसे, पूर्वजन्मके पुण्योंसे ऐसा देशभक्त देवता हमको अतिथिके रूपमें प्राप्त हुआ है । हम उसकी पूजा करके क्यों न अपनेको धन्य बनावें !

[दरबानका प्रवेश।]

दरबान—महाराज, दरबाजेपर मुगल-सेनापति दिलेरखाँ खड़े हैं। वे राठौर-सेनापतिसे मिलना चाहते हैं।

दुर्गा०—दिलेरखाँ? यह क्या? दिलेरखाँ?

दरबान—हाँ सरकार, यही नाम तो बतलाया है।

दुर्गा०—जाओ, उन्हें बड़े आदरके साथ ले आओ। (सरस्वतीसे) रानी साहबा, अब तुम भीतर जाओ। मैं राना साहबके साथ अभी आता हूँ। (सरस्वतीका प्रस्थान) दिलेरखाँ यहाँ! मतलब क्या है?

जय०—कुछ समझमें नहीं आता।

[दिलेरखाँका प्रवेश।]

दिलेर०—बन्दगी बहादुर दोस्त दुर्गादास, मुझे पहचाना?

दुर्गा०—मैं अपने जीवनदाताको किस तरह भूल सकता हूँ! आइए, आज मैं अपनेको बहुत भाग्यशाली समझ रहा हूँ। कहिए, यहाँ किस इरादेसे आना हुआ सरदार साहब?

दिलेर०—तीर्थदर्शन करनेके लिए दुर्गादास! तुम हिन्दू लोगोंके काशी, हरिद्वार, सेतुबन्ध-रामेश्वर वगैरह तीर्थ हैं न?—जहाँ यात्री लोग कभी कभी जाकर अपनी आकबत बनाते हैं। मैं भी मरनेसे पहले एक दफा तुम्हारे दर्शन करनेके लिए आया हूँ।

दुर्गा०—(दमभर चुप रहकर) दिलेरखाँ, मैं एक साधारण आदमी हूँ; जिन्दगीमें भरसक अपने कर्त्तव्यका पालन करता आ रहा हूँ।

दिलेर०—इस पापी जमानेमें इतना ही कितने आदमी करते हैं दुर्गादास? जिस जमानेमें भाई अपने भाईका गला काटनेको तैयार है, अपने थोड़ेसे फायदेके लिए लोग कौम भरको नुकसान पहुँचानेमें नहीं हिचकते—जिस जमानेमें खुशामद, जुल्म, झूठ, फरेब चारों तरफ

छाया हुआ है, उस जमानेमें तुम ऐसे दिलेर, साफदिल, नेकचलन देवताको देखनेसे रूह पाक होती है। खयाल करके तुम्हीं बतलाओ दुर्गादास, तुम्हारे यहाँके पुराणोंमें ही ऐसे कितने लोगोंका बयान है —जिन्होंने मालिकके लिए अपनी जानकी पर्वा न करके, मुल्कके लिए सब कुछ छोड़कर, अपनी पनाहमें आये हुएको बचानेके लिए अपना वतन छोड़ दिया—हूरसे बढ़कर हसीन मल्काकी बेजा उल्फतको लात मार दी—सताई गई औरतकी जान बचानेके लिए अपनी छाती आगे कर दी—और आख़िरको एक ऊँचे खानदानकी लड़कीका धरम बचानेके लिए देशनिकालेकी सजा कबूल की।—बतलाओ?

दुर्गा०—पुराणोंमें ढूँढ़नेकी क्या जरूरत है दिलेरखाँ? उससे भी ऊँचे दर्जेका चरित्र अगर देखना चाहो तो अपने चरित्रको ही आईना लेकर देखो।

दिलेर०—अपने?

दुर्गा०—हाँ दिलेरखाँ, अपने! और भी एक आदमीसे तुमको मिलाता दिलेरखाँ। पर खेद है कि वह यहाँ नहीं है। वह तुम्हारा ही जाति-भाई वफादार कासिम है।

[कासिमका प्रवेश।]

कासिम—कहाँ! महाराज कहाँ हैं? अरे ये तो हैं।

[जमीनपर साष्टांग प्रणाम करता है।]

दुर्गा०—यह तो कासिम ही है। कैसे आश्चर्यकी बात है। कासिम, तुम यहाँ खोजकर कैसे चले आये?

कासिम—पता लगाते लगाते आया हूँ महाराज, न जाने कितनी जगह जाकर आपकी तलाश की है महाराज!

दुर्गा०—कासिम, तुम महाराज किसे कह रहे हो?

कासिम—जिसे हमेशासे महाराज कहता आ रहा हूँ।

दुर्गा०—नहीं कासिम, तुम्हारे और मेरे महाराज इस समय जोधपुरके महाराज अजितसिंह हैं ।

कासिम०—उसका नाम न लीजिए महाराज, वह नमकहराम—

दुर्गा०—कासिम, याद रक्खो, तुम किसके आगे यह बात कह रहे हो ?

कासिम०—जानता हूँ, मालिकके नामपर छातीका खून बहानेवाले अपने देवताके आगे कह रहा हूँ । क्या करूँ, रहा नहीं जाता । जिसे आपने बचाकर इतना बड़ा किया, जिसके बचाव और राजपाटके लिए अपना सब सुख खोया, जिसका रोयाँ रोयाँ आपका एहसानमन्द होना चाहिए था—उसीने आपको बुढ़ापेमें—(कण्ठावरोध)

जय०—कासिम, तो दीन-इसलाम तुम ऐसे आदमी भी बनाता है ?

दुर्गा०—सभी धर्म एक ही बात कहते हैं, एक ही महानीतिकी शिक्षा देते हैं राना साहेब ! तब भी अगर मनुष्य मनुष्यत्व न प्राप्त कर सके तो वह धर्मका दोष नहीं है । मुसलमानोंमें काबलेसखाँ भी हैं, और दिलेरखाँ और कासिम भी हैं ।

दिलेर०—और हिन्दुओंमें श्यामसिंह भी है और दुर्गादास भी हैं ।

कासिम—हुजूर, मेरी एक अर्ज है ।

दुर्गा०—क्या कासिम ?

कासिम—मैंने सुना है कि हुजूर रानाकी रोटियाँ खा रहे हैं । यह तो नहीं हो सकता !

दुर्गा०—क्या नहीं हो सकता ?

कासिम—मेरे जीतेजी हुजूर, पेटके लिए दूसरेके दरवाजेपर न जायँ ।

जय०—यह क्या ! तुम क्या करना चाहते हो कासिम ?

कासिम—क्या करना चाहता हूँ ? सुनो राना, मैं महाराजको खिलाऊँगा ।

जय०—किस तरह ?

कासिम—जिस तरह हो सकेगा । मजूरी करके खिलाऊँगा, भीख माँगकर खिलाऊँगा ।

जय०—तुम क्या पागल हुए हो कासिम, तुम पावोगे कहाँ ?

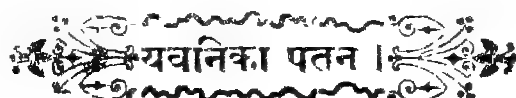
कासिम—जहाँसे पाऊँगा वहाँसे खिलाऊँगा । अगर आज हमारी महारानी जीती होतीं तो दुर्गादासको पेटकी रोटियोंके लिए दूसरेके दरवाजेपर न जाना पड़ता । वह नहीं है, लेकिन मैं हूँ । मै मजूरी करके खिलाऊँगा—रूखी सूखी जो मिलेगा, खिलाऊँगा ।—

जय०—यह भी कहीं हो सकता है ?

कासिम—नहीं हो सकता ? देखो महाराज दुर्गादास, तुमको जो पसन्द हो करो । पसन्द कर लो महाराज, राजाका दिया हुआ राज-भोग खाओगे, या भीख माँगा हुआ रूखा-सूखा अन्न खाओगे ? पसन्द कर लो, राजाके पैरोंमें रहोगे, या मेरे सिरपर रहोगे ? जो चाहो पसन्द कर लो ।

दुर्गा०—ठीक कहते हो कासिम, दुर्गादास तुम्हारा लाया हुआ रूखा-सूखा अन्न ही खायगा । (उठकर कासिमको गलेसे लगाकर) भाई कासिम, आजसे हम दोनों भाई हुए । (दिलेरखाँसे) देखो दिलेरखाँ, कासिम कैसा श्रेष्ठ पुरुष है !

दिलेर०—तुमने सच कहा था दुर्गादास, तुम दोनों महात्मा आज मेरे सामने खड़े होओ—एक दफा जी भरकर तुम दोनोंके दर्शन कर लूँ । खुदा ! तुम्हारे स्वर्गमें जो देवता सुन पड़ते हैं वे क्या इनसे भी बड़े हैं ?



हिन्दीकी सर्वोत्तम और सुप्रसिद्ध ग्रन्थमाला

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका

संक्षिप्त सूचीपत्र।



यह ग्रन्थमाला सन् १९१२ से निकल रही है। हिन्दी संसारमें यह सबसे पहली, सबसे अच्छी और सबसे सुन्दर ग्रन्थमाला है। हिन्दीके प्रायः सभी साहित्यसेवियों, कवियों और सम्पादकोंने इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। उपन्यास, नाटक, काव्य, जीवनचरित, समालोचना, राजनीति, इतिहास, विज्ञान, सदाचार, आरोग्य आदि विविध विषयोंके कोई ७२ ग्रन्थ इसमें निकल चुके हैं जिनका हिन्दीप्रेमी पाठकोंने खूब ही आदर किया है। इन ग्रन्थोंमेंसे अनेक ग्रन्थोंके चार चार और पाँच पाँच संस्करण हो चुके है और बराबर होते जाते है। ग्रन्थमालाका एक सेट मँगा लेनेसे एक छोटासा गृहपुस्तकालय (घरू लायब्रेरी) बन सकता है जो कुटुम्बके लिए सब तरहसे शान्ति और सुखका कारण होगा। आगे सब ग्रन्थोंका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है:—

१ **स्वाधीनता**। जान स्टुअर्ट मिलके 'लिबर्टी' नामक ग्रन्थका सुबोध और सरस अनुवाद। अनुवादक, पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी। मू० २), सजिल्द २॥)

२ **जॉन-स्टुअर्ट मिल**। स्वाधीनताके मूल लेखकका शिक्षाप्रद जीवनचरित। विद्यार्थियोंके लिए अतिशय उपयोगी। मूल्य ॥=), सजिल्दका १)

३ **प्रतिभा**। अतिशय सुरुचिसम्पन्न, भावपूर्ण, मनोरंजक और शिक्षाप्रद उपन्यास। बालक युवा स्त्री और पुरुष सबके हाथमें देने योग्य। मू० १।), १॥=)

४ **फूलोंका गुच्छा**। अनेक भाषाओंसे अनुवादित बहुत ही उत्कृष्ट सुन्दर और भावपूर्ण तेरह गल्पोंका संग्रह। मू० १), सजिल्द १॥)

५ **आँखकी किरकिरी**। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सर्वश्रेष्ठ और बहुत ही मनोरंजक उपन्यासका अनुवाद। मू० १॥), राजसंस्करणका २॥)

६ **चौबेका चिट्ठा**। स्वर्गीय बंकिम बाबूका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ। हँसी मजाक, इतिहास, राजनीति, समाजनीति, देशप्रेम आदिसे भरा हुआ। मू० ॥।=), १।=)

७ **मितव्ययता (गृह-प्रबंध-शास्त्र)** । सेमुएल स्माइल्सके ' थ्रिफ्ट ' का छायानुवाद । किफायतशारी और सदाचार सिखानेवाली पुस्तक । मू० ॥।≶)

८ **स्वदेश** । रवीन्द्रबाबूके स्वदेशसंबन्धी आठ निबन्धोंका अनुवाद । प्रत्येक देशप्रेमीके पढ़ने योग्य । मू० ॥≈), सजिल्द १≈)

९ **चरित्रगठन और मनोबल** । आध्यात्मिक लेखक राल्फ वाल्डो ट्राइनकी पुस्तकका अनुवाद । चरित्रसंगठनमें सहायता करनेवाली पुस्तक मू० ≶)

१० **आत्मोद्धार** । अमेरिकाके हब्शियोंके नेता डा० बुकर टी० वाशिंगटनका अतिशय शिक्षाप्रद और कल्याणकारी जीवनचरित । मू० १।), सजिल्द १॥।)

११ **शान्तिकुटीर** । अतिशय पवित्र, सात्विक और शिक्षाप्रद उपन्यास । स्त्री और पुरुष, बालक और बालिका सभीके पढ़नेयोग्य । मू० १≈), १॥।)

१२ **सफलता और उसकी साधनाके उपाय** । इसमें सफलता और उसके सिद्धान्तोंपर सरल भाषामें विचार किया गया है । मू० ॥।≈)

१३ **अन्नपूर्णाका मन्दिर** । बहुत ही शिक्षाप्रद उपन्यास । मू० १), १॥)

१४ **स्वावलम्बन** । डा० सेमुएल स्माइल्सके ' सेल्फ हेल्प ' के आधारसे लिखा हुआ नवयुवकों और विद्यार्थियोंके जीवनको उत्साही, उद्योगी और कार्यक्षम बना देनेवाला अतिशय शिक्षाप्रद ग्रन्थ । मू० १॥), २)

१५ **उपवास-चिकित्सा** । उपवास या लंघनके द्वारा भयंकरसे भयंकर बीमारियाँ आराम करनेके उपाय । मू० ॥।)

१६ **सूमके घर धूम** । द्विजेन्द्र बाबूके एक प्रहसनका अनुवाद । मू० ।)

१७ **दुर्गादास** । सुप्रसिद्ध नाट्याचार्य स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायकृत देशभक्ति और विश्वप्रेमके भावोंसे भरा हुआ नाटक । मू० १), १॥)

१८ **बंकिम-निबन्धावली** । बंकिम बाबूके धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और हास्यरसके उत्कृष्ट निबन्धोंका संग्रह । मू० १), १॥)

१९ **छत्रसाल** । बुन्देलखंडकेसरी राजा छत्रसालके चरित्रके आधारसे लिखा हुआ अत्यन्त रोचक, उत्कण्ठावर्द्धक और घटनावैचित्र्यपूर्ण उपन्यास । मू० १॥।) राजसंस्करण २॥)

२० **प्रायश्चित्त** और **उन्मुक्तिका बन्धन** । (परिवर्द्धित संस्करण) बेल्जियमके नोबल-प्राइज पानेवाले सुप्रसिद्ध लेखक मेटर-लिंकको दो भावपूर्ण और हृदयद्रावक नाटिकाओंका सुन्दर छायानुवाद । मू० ॥)

२१ **अब्राहम लिंकन** । अमेरिकाके प्रेसिडेंटका जीवनचरित । मू० ॥।)

२२ मेवाड़-पतन। मेवाड़के राणा अमरसिंह और बादशाह जहाँगीरके इतिहासके आधारसे लिखा हुआ द्विजेन्द्र बाबूका नाटक। मू० ॥।≈), १॥)

२३ शाहजहाँ। यह भी द्विजेन्द्रबाबूका प्रसिद्ध और इतिहासिक नाटक है। मुगल बादशाह शाहजहाँ इसके प्रधान नायक हैं। मू० १), १॥)

२४ मानव-जीवन। चरित्र-की शिक्षा देनेवाला श्रेष्ठ ग्रन्थ। मू० १॥), २)

२५ उस पार। द्विजेन्द्र बाबूका सामाजिक नाटक। मू० १≈), १॥≈)

२६ ताराबाई। द्विजेन्द्रबाबूका राजपूतानेकी एक ऐतिहासिक घटनाके आधारसे लिखा हुआ पद्य-नाटक। मू० १), १॥)

२७ देश-दर्शन। हमारे देशकी दुर्दशाका जीता जागता चित्र आँखोंके सामने खड़ा कर देनेवाला अपूर्व ग्रन्थ। सचित्र। मू० २), रा० सं० ३)

२९ नवनिधि। सुप्रसिद्ध उपन्यासलेखक प्रेमचन्दजीकी एकसे एक बढ़कर चुनी हुई नौ गल्पोंका संग्रह। सभी गल्पें पवित्र हैं। मू० ॥।), १।)

३० नूरजहाँ। द्विजेन्द्रबाबूका ऐतिहासिक नाटक। मुगल बादशाह जहाँगीर और उनकी बेगम नूरजहाँके चरित्रोंके आधारसे लिखित। मू० १≈), १॥≈)

३१ आयर्लैण्डका इतिहास। केसरी-सम्पादक श्रीयुत केलकरका लिखा हुआ उत्कृष्ट इतिहास ग्रन्थ। भारतवासियोंके लिए अतिशय उपयोगी। मू० २।)

३२ शिक्षा। साहित्यसम्राट् रवीन्द्रबाबूके शिक्षासम्बन्धी पाँच निबन्धोंका अनुवाद। सभी निबन्ध बड़े ही महत्त्वके हैं। मू० ॥)

३३ भीष्म। द्विजेन्द्रबाबूका पौराणिक नाटक। ब्रह्मचर्य, पितृभक्ति और स्वार्थत्यागका जीता जागता चित्र। बहुत ही शिक्षाप्रद। मू० १।), १॥।)

३४ काबूर। इटालीको आस्ट्रियाके चुंगलसे मुक्त करनेवाले महान् देशभक्त और राजनीतिज्ञका जीवनचरित। मू० १)

३५ चन्द्रगुप्त। द्विजेन्द्रबाबूका हिन्दू राजत्वके समयका ऐतिहासिक नाटक। मौर्यवंशी सम्राट चन्द्रगुप्तके चरित्रको लेकर यह लिखा गया है। मू० १), १॥)

३६ सीता। द्विजेन्द्रबाबूका पौराणिक नाटक। मू० ॥-)

३७ छायादर्शन। परलोकसम्बन्धी तत्त्वज्ञान। भूत-प्रेतोंकी वास्तविकताको सिद्ध करनेवाला अद्भुत ग्रन्थ। मू० १॥), २)

३८ राजा और प्रजा। जगत्प्रसिद्ध विद्वान् रवीन्द्रबाबूके राजनीतिसम्बन्धी ११ निबन्धोंका अनुवाद। प्रत्येक देशभक्तके अध्ययन-योग्य। मू० १), १॥)

३९ गोबर-गणेश-संहिता। व्यंग और वक्रोक्तियोंसे भरी हुई बहुत ही दिलचस्प चीज़। आप हँसेंगे और साथ साथ ज्ञान भी प्राप्त करेंगे। मू० ॥)

४१ पुष्पलता। अतिशय मनोहर, हृदयद्रावक और अमृतोपम गल्पोंका गुच्छा। गल्पें सबकी सब मौलिक है। लेखक श्रीयुत सुदर्शन। मू० १), १॥)

४२ महादजी सिन्धिया। ॲंगरेजोंके प्रबल प्रतिद्वन्दी, असीमसाहसी, वीर-केसरी महादजी सिन्धियाका जीवनचरित। मू० ॥।=), १।=)

४३ आनन्दकी पगडंडियाँ। अमेरिकाके ज्ञानी और अंतर्द्रष्टा जेम्स एलेनके 'बाईवेज आफ ब्लेसेडनेस' नामक वेदान्त ग्रन्थका अनुवाद। मू० १), १॥)

४४ ज्ञान और कर्म। बंगालके सुप्रसिद्ध विद्वान, हाईकोर्टके जज, स्व० गुरुदास बनर्जीके अमूल्य ग्रन्थका अनुवाद। मू० ३), ३॥)

४५ सरल मनोविज्ञान। इसमें मनोविज्ञान जैसे कठिन विषयको बहुत ही सरलतासे सुगम भाषामें उदाहरण आदि देकर समझाया है। मू० १॥), २)

४६ कालिदास और भवभूति। संस्कृतके दो सुप्रसिद्ध कवियोंके नाटकोंकी गुणदोषविवेचिनी, मर्मस्पर्शिनी और तुलनात्मक समालोचना। मू० १॥),२)

४७ साहित्य--मीमांसा। यह भी एक समालोचनाका ग्रन्थ है। इसमें पूर्वके और पश्चिमके साहित्यकी तुलना की गई है। मू० १।=), १॥।=)

४८ महाराणा प्रतापसिंह। स्व० द्विजेन्दबाबूका दुर्लभ नाटक। इसमें राणाका महान् चरित्र बड़ी सफलताके साथ अंकित हुआ है। मू० १॥), २)

५० जातियोंको सन्देश। मूल-लेखक श्रीयुत पाल रिचर्ड और भूमिका-लेखक साहित्यसम्राट् श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर। मू० ॥-)

५१ वर्तमान एशिया। पाश्चात्य जातियोंकी धूर्तताओं, छल-कपटों और अत्याचारोंका सच्चा इतिहास। मू० २), २॥)

५२ नीतिविज्ञान। लेखक, बाबू गोवर्धनलाल, एम० ए०, बी० एल। आचारशास्त्र या नीतिविज्ञानका हिन्दीमें सबसे पहला ग्रन्थ। मू० २।), ३)

५३ प्राचीन साहित्य। श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके रामायण, मेघदूत आदि प्राचीन साहित्यसम्बन्धी सात निबन्धोंका अनुवाद। मू० ॥-)

५४ समाज। रवीन्द्रबाबूके समाजशास्त्रसम्बन्धी आचारका अत्याचार, समुद्र-यात्रा, विलासकी फाँसी, आदि आठ निबन्धोंका अनुवाद। मू० ॥।=), १।=)

५५ अञ्जना। पौराणिक कथाके आधारसे लिखा हुआ श्रीयुत सुदर्शनका मौलिक नाटक। बहुत ही भावपूर्ण और शिक्षाप्रद। मू० १।), १॥।)

५६ मुक्तधारा। महाकवि रवीद्रनाथका नया नाटक। मू० ॥≈), १=)

५७ सुहराब-रुस्तम। स्व० द्विजेन्द्रलाल रायकी वीर और करुणरससे भरी हुई बंगाली नाटिकाका गद्य और पद्यमय अनुवाद। मू० ॥=), १)

५८ चन्द्रनाथ । बंगालके इस समयके सर्वश्रेष्ठ लेखक शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायके एक सुन्दर सामाजिक उपन्यासका अनुवाद । मू० ॥।), १।)

५९ भारतके प्राचीन राजवंश (तीसरा भाग)। प्राचीन कालसे लेकर अबतकके तमाम राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का इतिहास । मू० ३), रा० सं० ४)

६० रवीन्द्र-कथाकुञ्ज । महाकवि रवीन्द्रनाथकी तमाम गल्पोंमेंसे चुनी हुई बहुत ही उच्च श्रेणीकी ९ गल्पोंका संग्रह । मू० १), १॥)

६१ मेरे फूल । गुरुकुल-युनिवर्सिटीके स्नातक सुकवि पं० वंशीधरजी विद्यालंकारकी सुन्दर कविताओंका संग्रह । मू० ॥।), १।)

६२ संजीवन-सन्देश । साधुश्रेष्ठ टी० एल० वास्वानीके १ युथ एण्ड दि नेशन, २ विटनेस आफ दि एंश्येण्ट और ३ एंश्येण्ट मुरली नामक तीन श्रेष्ठ निबन्धोंका अनुवाद । मू० ॥=), १)

६३ प्रेम-प्रपंच । जर्मनीके शेक्सपीयर महाकवि शिलरके ' लुइए मिलरिन ' नामक शोकान्त नाटकका सुन्दर रूपान्तर । मूल्य ॥≈), १=)

६४ सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति । डा० ओरिसन स्वेट मार्डेनके ' पीस, पावर एण्ड प्लेण्टी ' नामक अध्यात्मिक ग्रन्थका भावानुवाद । मूल्य १॥), २)

६५ चिर-कुमार-सभा । महाकवि रवीन्द्रनाथके ' प्रजाप्रतिर निर्बन्ध ' नामक प्रहसनका अनुवाद । मू० १।), रा० सं० २)

६६ विधाताका विधान । श्रीमती निरुपमादेवीका लिखा हुआ सर्वश्रेष्ठ उपन्यास । बिल्कुल नये ढंगका प्लाट और नई भावनायें । मूल्य २॥), ३)

६७ घृणामयी । उदीयमान लेखक पं० इलाचन्द्र जोशीका मौलिक सामाजिक उपन्यास । बिल्कुल नये ढंगकी रचना । मू० १।), १॥।)

६८ मानव-हृदयकी कथायें । फ्रांसके सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक मोपासाँकी चुनी हुई सरस कहानियोंका सुन्दर अनुवाद । मूल्य १), १॥)

६९ साहित्य । रवीन्द्रबाबूके साहित्यसम्बन्धी ९ उत्कृष्ट निबन्धोंका अनुवाद । मू० ॥।), १।)

७० चन्द्रकला । श्रीचन्द्रगुप्त विद्यालंकारकी उत्कृष्ट मौलिक कहानियोंका संग्रह । मू० ॥।=), १।=)

७१ मध्यप्रदेशका इतिहास और नागपुरके भोंसले । मूल्य लगभग १॥)

७२ परख । उदीयमान लेखक बाबू जैनेन्द्रकुमारका अतिशय सुन्दर और करुणरसपूर्ण सचित्र उपन्यास । मू० १), १॥)

प्रकीर्णक-पुस्तक-माला।



२ **फूलोंका गुच्छा।** द्वितीय भाग (कनक रेखा)—सुप्रसिद्ध गल्प-लेखक केशवचन्द्र गुप्तकी भावपूर्ण और मनोरंजक १३ गल्पोंका अनुवाद। मू० १), १॥)

३ **युवाओंको उपदेश।** विलियम कार्बेटके 'एडवाइज टू यंगमेन' का भावानुवाद। विद्यार्थियों और युवाओंके लिए बहुत ही उपयोगी। मू० ॥=)

४ **भारत-रमणी।** द्विजेन्द्रलाल रायके सामाजिक नाटकका अनुवाद। विवाह, वरविक्रय, बहुसन्ततिका कष्ट, आदि सुधारसम्बन्धी प्रश्नोंपर बड़ी ही अच्छी चर्चा है। मू० ॥=), १।=)

५ **बच्चोंके सुधारनेके उपाय।** बच्चोंकी आदतें सुधारने और उन्हें सदाचारी तथा विनयशील बनानेवाले अतिशय सुगम उपाय। मू० ॥=)

६ **कोलम्बस।** अमेरिका महाद्वीपका पता लगानेवाले असमसाहसी नाविकका उत्साहवर्धक और साहस बढ़ानेवाला जीवनचरित। मू० ।॥)

७ **सन्तान-कल्पद्रुम।** मनचाही, खूबसूरत, बलवान्, चरित्रवान् और नीरोग सन्तान उत्पन्न करनेके उपाय। मू० १)

१० **कर्नल सुरेश विश्वास।** एक साहसी बंगालीका अत्यंत आश्चर्यजनक घटनाओंसे भरा हुआ अद्भुत जीवनचरित। मू० ॥)

११ **व्यापार-शिक्षा।** व्यापार, पूँजी, सिक्का, हुण्डी, बैंक, बहीखाता, साझा, तेजी मन्दी, बीमा, आदि विषयोंपर उपयोगी पाठ। मू० ।॥)

१२ **शान्ति-वैभव।** चरित्रगठन और चरित्रसंशोधनके लिए। मू० ।-)

१३ **ब्याही बहू।** ससुराल जानेवाली लड़कियोंके लिए बहुत ही उत्तम शिक्षा देनेवाली एक अनुभवी विद्वान्की लिखी हुई पुस्तक। मू० ।)

१४ **पाषाणी** (**अहल्या**) द्विजेन्द्रबाबूका पौराणिक नाटक। मू० ।॥), १।)

१५ **सिंहल-विजय।** द्विजेन्द्रबाबूका इतिहासिक नाटक। मूल्य १=), १॥)

१८ **प्राकृतिक चिकित्सा।** इसमें रोग दूर करनेवाले बिना कौड़ी पैसेके प्राकृतिक उपायोंका वर्णन है। मू० ।=)

१९ **विद्यार्थियोंके जीवनका उद्देश्य।** मू० -)॥

२० दुग्ध-चिकित्सा। केवल दूधके सेवनसे सब प्रकारके रोगोंको दूर करनेके उपाय बतलानेवाली पुस्तक। मू० =)

२१ सुगम चिकित्सा। खाने पीनेके नियमों और दिनचर्यामें सावधानी तथा संयम रखने द्वारा बड़े बड़े रोगोंको आराम करनेके उपाय। मू० =)

२२ देवदूत। सुकवि प० रामचरित उपाध्यायका देशभक्तिके भावोंसे लबालब भरा हुआ सुन्दर खण्डकाव्य। मू० ।=)

२३ देवसभा। यह भी पूर्वोक्त उपाध्यायजीकी ही रचना है। मू० ।-)

२४ अरबी-काव्य-दर्शन। अरबीके नामी नामी कवियोंकी विविध प्रकारकी रचनाओंका संग्रह। मू० १।), सजिल्दका १॥।)

२५ बूढ़का ब्याह। खड़ी बोलीका सुन्दर सचित्र काव्य। लेखक, सुकवि श्रीयुत सय्यद अमीर अली (मीर)। बुढ़ापेके ब्याहका परिणाम। मू० ।=)

२६ सुखदास। हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासलेखक श्रीयुत प्रेमचन्दजीने इसे जार्ज इलिएटके ' साइलस माइनर ' की छाया लेकर लिखा है। मू० ॥=)१)

२७ श्रमण नारद। बौद्ध युगकी बहुत ही मनोरंजक और परोपकारका पाठ सिखानेवाली प्रत्येक घरमें पढ़ीजाने योग्य सुन्दर कहानी। मू० =)

२८ दियातले अँधेरा। एक स्त्रीशिक्षाविषयक सचित्र कहानी। मू० ≡)

२९ सदाचारी बालक। एक छोटीसी शिक्षाप्रद कहानी। मू० =)॥

३० भाग्यचक्र। एक करुणरसपूर्ण कहानी। मू० =)

३१ पिताके उपदेश। एक आदर्श पिताकी अपने विद्यार्थी पुत्रके नाम लिखी हुई अतिशय शिक्षाप्रद चिट्ठियोंका संग्रह। मू० =)

३२ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा। बालकों, बालिकाओं, विद्यार्थियों और उनके पिता तथा संरक्षकोंके भी पढ़ने योग्य। मू० ≡)

३३ जीवन-निर्वाह। असली धर्मका, सच्चे सदाचारका और सच्ची देशोन्नतिका स्वरूप समझानेवाला अतिशय शिक्षाप्रद ग्रन्थ। मू० १), १॥)

३४ जननी और शिशु अर्थात् जच्चा और बच्चा। प्रसूता स्त्रियों और उनके बच्चोंकी रक्षा तथा सेवा शुश्रूषाकी शिक्षा। मू० ॥=)

३५ भारतके प्राचीन राजवंश। द्वितीय भाग। शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुङ्ग, कण्व, पल्लव, शक, कुशान, हुण, गुप्त, बैस, आन्ध्र, मौखरी, लिच्छवी, ठाकुरी आदि प्राचीन राजवंशोंका इतिहास। मू० ३)

३६ योगचिकित्सा । शारीरिक और मानसिक क्रियाओंके द्वारा शरीर नीरोग करनेके और तमाम रोगोंको दूर करनेके सहज उपाय । मू० ≈)

३७ विद्यार्थियोंका सच्चा मित्र । विद्यार्थियों और नवयुवकोंके लिए आरोग्य या स्वास्थ्यविज्ञानकी अद्वितीय पुस्तक । मू० ॥।≋)

३८ ठोक-पीटकर वैद्यराज । मौलियरके आधारसे बिल्कुल भारतीय साँचेमें ढाला हुआ बढ़िया प्रहसन । तीन बढ़िया चित्रोंसे सुशोभित । मू० ॥)

३९ विधवा-कर्तव्य । एक अनुभवी विद्वानकी लिखी हुई विधवाओंको कर्तव्यकी शिक्षा देनेवाली उत्कृष्ट पुस्तक। मू० ॥)

४० चित्रावली । कई नामी लेखकोंकी सुन्दर सुन्दर गल्पोंका संग्रह । प्रत्येक गल्प एक एक चित्र है । मू० ॥≈)

४१ मधु-चिकित्सा । मधु या शहदके गुणोंका बहुत ही उत्तमताके साथ डाक्टरी और आयुर्वेदिक दृष्टिसे विवेचन । मू० ≋)॥

४२ वीरोंकी कहानियाँ । राजपूतोंकी वीरताकी सच्ची कहानियाँ । मू०।≋)

४३ कठिनाईमें विद्याभ्यास । बड़ीसे बड़ी कठिनाइयों और अड़चनोंके होते हुए भी विद्याभ्यास करनेवाले प्रसिद्ध पुरुषोंके जीवनचरित्र । मूल्य ॥≋)

४४ हम दुखी क्यों हैं ? इसमें आवश्यकताओंके बढ़ा लेनेको दुःखोंका और सादगी तथा मितव्ययतासे रहनेको सुखका कारण बतलाया है । मू० ॥)

४५ मानसिक शक्तियोंको बढ़ानेके उपाय । मू० ≈)

४६ तमाखूसे हानि । तमाखूके व्यसनको छुड़ानेवाली अद्वितीय पुस्तक मू० ≡)

४७ मानव-धर्म । ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकृत । मू० १)

नये ग्रन्थोंका विशेष परिचय



परख

हिन्दीके मस्तकको ऊंचा करनेवाला एक अतिशय हृदयद्रावक और करुणारस-पूर्ण उपन्यास । उदीयमान उपन्यास और गल्पलेखक बाबू जैनेन्द्रकुमारके इस मौलिक उपन्यासको पढ़कर पाठक प्रसन्न हो जायँगे । इसमें एक ग्रामीण बाल-बिधवाका बिलकुल अनूठा, अपूर्व और पवित्र चरित्र अंकित किया गया है । मनोभावोंका ऐसा सरल चित्रण शायद ही किसी हिन्दी उपन्यासमें किया गया हो । आदर्श हिन्दूस्त्रीके स्वार्थत्यागका यह दुर्लभ चरित्र हृदयपर चिरस्थायी प्रभाव छोड़ जाता है । एक नामी चित्रकारके कई सुन्दर चित्रोंसे पुस्तककी शोभा और भी बढ़ गई है । मूल्य १), सजिल्दका १॥)

घृणामयी

एक बिल्कुल नये ढंग और नई शैलीका उपन्यास । इसमें आधुनिक सभ्यतासे दीक्षित एक धनी कुटुम्बकी शिक्षित कन्याने अपनी अतिशय हृदयद्रावक शोकान्त आत्मकथा वर्णन की है । हिन्दीका प्रसिद्ध साप्ताहिक **प्रताप** लिखता है—
" घृणामयीके लेखक महाशयने भावोंके घात-प्रतिघातका एक अच्छा चित्र दृष्टिके सामने रक्खा है ।...वे जीवनकी अठखेलियोंपर बारीकीसे देखनेके अभ्यासी हैं । वे यथार्थमें उदीयमान लेखक हैं और उनकी यह कृति आदरके योग्य है । " मूल्य १।), सजिल्द १।।)

मानव-हृदयकी कथायें

फ्रान्सके जगत्प्रसिद्ध लेखक मोपाँसाँकी चुनी हुई कहानियोंका संग्रह । यूरोपमें इससे बढ़कर कहानी-लेखक अब तक भी कोई नहीं हुआ । इसकी कुछ समालोचनायें देखिए—

सरस्वती—" इसकी मौलिकता, सर्वतोमुखी प्रतिभा, तथा सजीव एवं आकर्षक रचनाप्रणाली संसारमें अपना सानी नहीं रखती ।

पं० अवध उपाध्याय—" मैं दावेके साथ कहता हूँ कि आज तक कहानियोंका ऐसा अच्छा संग्रह हिन्दीमें नहीं निकला । "

प्रताप—"कलाकी दृष्टिसे मोपासाँकी कृति बहुत ऊँचे दर्जेकी है। इन कहानियोंमें स्त्रीचरित्रकी कमजोरीका चित्र खींचा गया है। उनके रोचक और किसी किसीके बहुत भीषण होनेमें कोई सन्देह नहीं है।...उसने (मोपासाँने) सदाचारकी शिक्षा देनेका कभी दावा नहीं किया। वह अपने फनका उस्ताद है, जीवनके कुछ विशेष विभागोंके चित्रण करनेमें उसे कमाल हासिल है। वह वह हुनर दिखलाता है, जिसकी इच्छा हो उसकी कदर करे और जिसकी इच्छा न हो वह न करे; किन्तु उसके कमालसे इंकार करना आसान नहीं।"

अनुवाद ज्योंका त्यों और सुन्दर किया गया है। प्रारंभमें ग्रन्थकर्त्ताकी साहित्यिक जीवनी दी गई है और लब्धप्रतिष्ठ कहानीलेखक पं० ज्वालादत्तजीने एक मर्मस्पर्शी भूमिका लिख दी है। मू० १), सजिल्दका १॥)

चन्द्रकला

गुरुकुल-युनीवर्सिटीके स्नातक पं० चन्द्रगुप्त विद्यालंकारकी आठ मौलिक कहानियोंका संग्रह। इसकी प्रशंसामें कुछ समालोचनायें देखिए—

प्रताप—"प्रत्येक कहानी एक नया भाव लेकर लिखी गई है। एक वार आरंभ करनेके पश्चात् पुस्तक रखनेकी इच्छा नहीं होती।"

माधुरी—"कहानियाँ भावपूर्ण और रोचक है। भाषा सुन्दर और मुहाविरेदार है।"

महारथी—चन्द्रगुप्तजीकी कल्पना उर्वरा है, भाषामें भाव है, चित्रणमें रंग है, उनके हृदयमें भी सह-अनुभूति है। अपने पात्रोंके साथ साथ रोने और हँसनेकी क्षमता उनके हृदयमें है।" मूल्य ॥।≈), सजिल्दका १।≈)

विधाताका विधान

श्रीमती निरुपमादेवी बंगला भाषाकी उपन्यास-लेखिकाओंमें सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। रवीन्द्र बाबू जैसे विश्वविख्यात लेखक भी उनके प्रशंसक है। स्त्रीपात्रोंका चरित्रचित्रण करनेमें तो वे अद्वितीय गिनी जाती हैं। यह बृहत् उपन्यास उन्हींके 'विधिलिपि' का अनुवाद है। बड़ा ही पवित्र और सुन्दर है। मूल्य २॥) सजिल्दका ३)

प्रताप—"इसमें नामके अनुसार ही विधाताके विधानका एक अनुपम खाका खींचा गया है। उपन्यासकी नायिकाका ऐसा आदर्श और अपूर्व चरित्र लिखा गया है जो बिल्कुल बेजोड़ है।"

कर्मवीर—" इस सामाजिक उपन्यासमें आदर्श पात्रोंकी सृष्टि की गई है और चरित्रोंका निर्वाह भी बहुत कौशल्यसे किया गया है।"

श्रीव्यंकटेश्वरसमाचार—" यह उपन्यास नहीं बल्कि सत्यनिष्ठा, परोपकार और सात्त्विक प्रेमकी एक कथा है जिसे पढ़कर पाठकोंपर उसकी छाप पड़े बिना नहीं रह सकती।"

चिर-कुमार-सभा

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगौर हँसी मजाक लिखनेमें भी बड़े सिद्धहस्त हैं। उनके इस विशाल प्रहसनमें कालेजके कुछ ऐसे जोशीले विद्यार्थियोंकी वाक्य-वीरताका खाका खींचा गया है जिन्होंने चिरकालतक अविवाहित रहकर देशसेवा करनेकी प्रतिज्ञा करके एक सभा स्थापित की है। ये अनुभवहीन जैंटिलमेन धीरे धीरे रूप और सौन्दर्यके जालमें किस तरह अपने आप फँसते गये हैं और अन्तमें अपनी चिरकुमार-सभाको भी ले डूबे हैं इसका हँसी में लोटपोट कर देनेवाला वर्णन है। भूमिकामें पं० इलाचन्द्र जोशीने हास्यरसकी महत्त्वपूर्ण आलोचना की है। कुछ पत्रोंकी राय देखिए—

कर्मवीर—"श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी प्रतिभाके विषयमें कुछ कहना ही व्यर्थ है, वह सर्वश्रुत है। उन्होंने जिस विषयपर लेखनी चलाई है, उसीमें 'वाह-वाह' बरसा दिया है। परंतु उनके लेखनमें जो विशेषता है वह यही है कि वे जो कुछ लिखते हैं उसमें उनकी कविता दूर नहीं रहने पाती। उनके हृदयकी कोमलता पन्ने पन्नेमें गुदगुदाती है। चिरकुमारसभा उनका शिष्ट हास्यरसका प्रहसन है जिसमें आदर्शवादी युवकोंके पवित्र निश्चयकी फिसलनपर सुन्दर चुटकियाँ ली गई हैं।...अनुवादमें रविबाबूके भावोंकी खूब रक्षा की गई है।"

श्रीव्यंकटेश्वर—" समस्त पुस्तक बहुत ही गंभीर, पैने, प्रभावशाली और युक्तिपूर्ण परिहाससे भरी है।" मूल्य १।), राजसंस्करण २)

साहित्य

यह भी महाकवि रवीन्द्रनाथकी रचना है। इसमें उनके ९ महत्त्वपूर्ण निबन्ध हैं—१ साहित्यका तात्पर्य, २ साहित्यकी सामग्री, ३ साहित्यके विचारक, ४ सौन्दर्यबोध, ५ विश्वसाहित्य, ६ सौन्दर्य और विश्वसाहित्य, ७ साहित्यसृष्टि, ८ ऐतिहासिक उपन्यास, ९ कविजीवनी। इनमें साहित्यके प्रत्येक अंगकी बहुत ही सूक्ष्म, गंभीर और तलस्पर्शी आलोचना की गई है। सम्मतियाँ देखिए—

माधुरी—" यह साहित्य-समालोचनाका बहुत उत्कृष्ट कोटिका ग्रन्थ है । रवीन्द्रबाबूकी प्रतिभा बहुत व्यापक है । वे जिस विषयपर लेखनीको संचालित करते हैं उसमें जीवन डाल देते है । साहित्य पुस्तकमें संकलित सभी समालोचनायें परम रोचक हैं । रोचक होते हुए भी इनमें गंभीरता है, और पढ़नेमें गद्य-काव्यकासा आनंद आता है । नहीं जानते हिन्दीका ऐसा सौभाग्य कब होगा जब इसमें भी इस ढंगकी समालोचनाओंका लिखा जाना आरंभ होगा ।''' अनुवाद सुन्दर हुआ है । जो लोग गंभीर साहित्य-समालोचना पढ़ना चाहते हों उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए । "

पं० किशोरीदास वाजपेयी—" साहित्यमें विषयकी प्रतिपादनशैली बड़ी गंभीर है जो लेखकके अनुरूप ही है । वर्णन करनेका ढंग कवितामय होनेसे हृदयको स्पर्श करता है । वस्तुतः हिन्दी साहित्यको ऐसी पुस्तकोंकी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी सुन्दर स्वास्थ्यके लिए पवित्र जल-वायुकी । "

बाबू जैनेन्द्रकुमार—" रवीन्द्र कैसे सूक्ष्मदर्शी समालोचक हैं ! जो लिखा है, निराली छटा है । मानो सम्पूर्ण जगतकी वह एक यथाविधि सक्रम धारणापर पहुँच सके है । मानों दुनियाके सम्बन्धमें एक निश्चित समाधान कर चुके है । जो कुछ लिखते है पूरे अधिकारसे और प्रत्यक्षदर्शीकी हैसियतसे लिखते है । "

मध्यप्रदेशका इतिहास और नागपुरके भोंसले

मध्यप्रदेशका (सी० पी०) पर राज्य करनेवाले मौर्य, आन्ध्र, गुप्त, परिव्राजक, उच्छकल्प, राजर्षितुल्यकुल, सोमवंश, वाकाटक, हैहय, राठौर, सोलंकी, शैल, परमार, चन्देल, गौड़, मुसलमान आदि राजवंशोंका संक्षिप्त और भोंसलोंका विस्तृत इतिहास इस ग्रन्थमें संकलित किया गया है । अबतककी उपलब्ध सामग्रीका पूरा पूरा उपयोग किया गया है । भौंसलोंका इस प्रकारका क्रमबद्ध इतिहास हिन्दीमें अबतक प्रकाशित नहीं हुआ । भोंसला-राजवंशके अनेक ऐतिहासिक और दुर्लभ चित्र इसमें दिये गये है । मू० १॥), सजिल्दका २)

विद्यार्थियोंका सच्चा मित्र

हमारे लड़के निस्तेज, फीके, उत्साहहीन, बलहीन, व्यसनी, असंयमी, और डरपोंक इसलिए होते हैं कि उन्हें शरीरको नीरोग, समर्थ, बली और उत्साही

बनानेकी शिक्षा ही नहीं मिलती। वे जवानीमें ही बूढ़े हो जाते है और वैद्यों तथा डाक्टरोंकी सेवा करते करते ही मर जाते हैं। वास्तवमें आरोग्य या तन्दुरुस्तीकी शिक्षा धर्मशिक्षाके ही समान हमारी शिक्षाका एक अंग होना चाहिए और प्रत्येक स्कूल, पाठशालामें इसका ज्ञान कराया जाना अनिवार्य होना चाहिए। यह पुस्तक इसी विषयका अतिशय सरल पद्धतिसे ज्ञान करानेके उद्देश्यसे लिखी गई है और इस विषयकी अबतक प्रकाशित हुई पुस्तकोंमें सर्वोत्तम है। नीरोग रहना मनुष्यमात्रका धर्म है, शरीरयंत्रकी रचना, पचनक्रिया—चर्वण, द्रावण, अन्नमेंसे रसका पृथक्करण, मलका पृथक्करण, शरीरमें रोग कैसे होते हैं, बड़े नलको धोनेके विधि, दाँत साफ रखनेके उपाय, स्वच्छ हवाके लाभ, तमाखूसे दाँतोंकी खराबी, [illegible]वका और पचनक्रियाका बिगाड़, धर्मवृत्ति और सद्गुणोंका नाश, मन्दाग्निके चिह्न तथा कारण, गरम और ठण्डे पानीके स्नान, वस्त्र, प्रकाश, ब्रह्मचर्य, वीर्यरक्षाके उपाय, आदि इसके मुख्य मुख्य अध्याय है। एक ही वर्षमें इसका दूसरा एडीशन संशोधित और परिवर्द्धित करके छपाया गया है। मूल्य ।॥≶)

Approved by Directors of Public Instruction

सरकारी शिक्षा-विभागोंद्वारा स्वीकृत

(यू० पी०)

(वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल्स ट्रावलिंग तथा सर्क्यूलेटिंग लायब्रेरियोंके लिए)

Book	Date of Approval	Book	Date of Approval
१ छत्रसाल	१४-१२-१९२७	८ शाहजहाँ	,,
२ सदाचारी बालक	,,	९ प्रायश्चित्त	,,
३ मेवाड़-पतन	,,	१० प्रतिभा	,,
४ भीष्म	,,	११ कोलम्बस	,,
५ चन्द्रगुप्त	,,	१२ महादजी सिन्धिया	,,
६ दुर्गादास	,,	१३ चरित्रगठन और मनोबल	,,
७ सीता	,,	१४ पिताके उपदेश	,,

Book	Date of Approval
१५ अस्तोदय और स्वावलम्बन	१४-१२-२७
१६ सफलता और उसकी साधनाके उपाय	,,
१७ जीवन-निर्वाह	,,
१८ प्राकृतिक चिकित्सा	,,
१९ चौबेका चिट्ठा	,,
२० स्वदेश	,,
२१ राजा और प्रजा	,,
२२ मुक्तधारा	१४-४-२८
२३ राणा प्रतापसिंह	,,
२४ नूरजहाँ	,,
२५ उस पार	,,
२६ रवीन्द्र-कथा-कुञ्ज	,,
२७ नवनिधि	,,
२८ भाग्यचक्र	,,
२९ दियातले अँधेरा	,,
३० कानून	,,
३१ जान स्टुअर्ट मिल	,,
३२ स्वावलम्बन	,,
३३ मितव्ययता	१४-४-२८
३४ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा	,,
३५ शान्ति-वैभव	,,
३६ आनन्दकी पगडंडियाँ	,,
३७ विद्यार्थियोंका सच्चा मित्र	,,
३८ सुगम चिकित्सा	,,
३९ शिक्षा	,,
४० समाज	,,
४१ गोबर-गणेश-संहिता	,,
४२ कालिदास और भवभूति	,,
४३ सुहराब-रुस्तम	२१-१-२९
४४ सिंहल-विजय	२१-१-२९
४५ पाषाणी	,,
४६ अंजना	,,
४७ आँखकी किरकिरी	,,
४८ अन्नपूर्णाका मन्दिर	,,
४९ चंद्रनाथ	,,
५० सुखदास	,,
५१ श्रमण नारद	,,

(इंटरमीजियट कालेजोंके लिए)

१ छत्रसाल १९३०-३१ (सप्लीमेंटरी रीडिंग इन इंटर आर्ट्स)

२ सफलता और उसकी साधनाके उपाय ९-५-१९२९ (लायब्रेरियोंके लिए)

(वर्नाक्यूलर मिडिल और हाईस्कूलोंके लिए)

१ कठिनाईमें विद्याभ्यास १९३०-३१

२ वीरोंकी कहानियाँ ,,

(सी० पी०)

For Prize Distribution in Primary, V. M., A. V. M., High and Normal Schools.

Book	Order Dated	Book	Order Dated
१ शांति-वैभव	५-९-१९१६	५ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा	,,
२ युवाओंको उपदेश	,,	६ पिताके उपदेश	,,
३ सफलता और उसकी साधनाके उपाय	२०-४-१६	७ स्वावलंबन	,,
		८ बंकिम-निबंधावली	७-१०-२९
४ चरित्रगठन और मनोबल	,,	९ वीरोंकी कहानियाँ	,,

For High Schools

१० अरबी-काव्यदर्शन	१५-१-२६	१३ संजीवन-संदेश	,,
११ समाज	२३-७-२८		
१२ सामर्थ्य, समृद्धि और शांति	,,	१४ योग-चिकित्सा	

(रैपिड रीडरें)

१५ मानव-जीवन Class IX Order No. 6279 d/ Oct. 7,1929

१६ कठिनाईमें विद्याभ्यास Class VIII Order No. 2267 Mar. 3-30

For A. V. & Vernacular Schools

१७ कोलम्बस	१९१९	२१ बच्चोंके सुधारनेके उपाय	१२-६-२२
१८ चौबेका चिट्ठा	,,	२२ नवनिधि	१५-१०-१५
१९ कनक-रेखा	,,	२३ मितव्ययता	,,
२० प्रतिभा		२४ आत्मोद्धार	२८-६-२२

For Village Public Libraries in C. P

(Committee's List, Serial No. 436 to 462)

१ काबूर, २ कोलम्बस, ३ चंद्रगुप्त, ४ दुर्गादास, ५ सिंहलविजय, ६ नूरजहाँ, ७ पाषाणी, ८ भारत-रमणी, ९ भीष्म, १० मेवाड़-पतन, ११ शाहजहाँ, १२ उसपार, १३ अंजना, १४ आँखकी किरकिरी, १५ अन्नपूर्णाका मंदिर, १६ प्रतिभा, १७ चंद्रनाथ, १८ आयर्लैण्डका इतिहास, १९ वर्तमान एशिया, २० चौबेका चिट्ठा, २१ देशदर्शन, २२ राजा और प्रजा, २३ गोबर-गणेश-संहिता, २४ साहित्य-मीमांसा, २५ जातियोंको संदेश, २६ नीतिविज्ञान, २७ अरबी-काव्यदर्शन

पंजाब

१ प्राचीन साहित्य by Rabindra Nath Tagore.
Honours in Hindi Examination, 1929-30
२ मेवाड़-पतन Proficiency in Hindi Examination
३ अरबी-काव्यदर्शन For Libraries & Prize Distribution

बिहार और उड़ीसा

Order No. 44 T 11-7-29 22-6-1929

१ नवनिधि
२ पिताके उपदेश } For Juvenile Libraries
३ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा
४ श्रमण नारद For Children's Libraries

बम्बई

Bombay Board of School Leaving Examination

(बम्बई यूनीवर्सिटीके मैट्रिकके कोर्समें १९३०-३१ के वास्ते)

१ मेरे फूल, २ पुष्पलता, ३ मानव-जीवन

नीचे लिखे पतेसे मँगाइए—

संचालक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पो. गिरगाँव,
बम्बई ।